UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186350

UNIVERSAL
LIBRARY

साहित्य क्या है ?

जैनेन्द्रजी हिन्दीमें इस समय बड़े प्रतिभाशाली साहित्यकार हैं। साहित्यकी अनेक परिभाषाएँ बनाई गईं, पर, आज तक उनमेंसे कोई भी पूरी तरह संतोषजनक नहीं हो सकी। जैनेन्द्रजी कहते हैं कि हमें हमेशा पहलेकी परिभाषाओंका पूरा उपयोग कर लेना चाहिए और उससे अधिक पूर्ण परिभाषा बनानेकी कोशिश करते रहना चाहिए।

इस लेखमें जैनेन्द्रजीने बताया है कि उनके मतसे " **प्रगतिशील, अनुभूतिशील जीवनका लिपिबद्ध व्यक्तीकरण साहित्य है।** " इसके बाद उन्होंने पृथ्वीपर प्राणीकी उत्पत्तिसे लेकर आज तकका उसका मनोविज्ञानिक इतिहास, —उसमें विभिन्न अनुभूतियोंका उदय और ह्रास अपने एक लाक्षणिक ढंगसे बताया है। सबसे पहले भेदकी अनुभूति, फिर क्षुद्रताकी अनुभूति, फिर युद्धवृत्ति, फिर अहंकार, फिर प्रेम और सबसे अन्तमें अभेदकी अनुभूतिका आविर्भाव चित्रित किया गया है। ये सारीकी सारी अनुभूतियाँ वेदोंके ज़मानेसे लेकर आज तकके साहित्यमें संचित हैं। **फिर भी, वह मूल अनुभूति जो कि साहित्यकी मूल प्रेरणा है, जैनेन्द्रजीके मतसे अभेदकी अनुभूति है।** इस अभेदकी अनुभूतिसे न केवल साहित्य ही पैदा हुआ है, बल्कि इसी अनुभूतिसे धर्म, कला, विज्ञान आदि भी पैदा हुए हैं।

अध्ययन

इस लेखकी नीचे लिखी पंक्तियाँ मार्क कीजिए और उनका विशेष अध्ययन कीजिए।

(१) संपूर्ण तीसरा पैरेग्राफ।

(२) पन्द्रहवें पैरेग्राफके प्रारम्भकी चार पंक्तियाँ। यह पैरेग्राफ " मनुष्यकी मनुष्यके साथ—"से शुरू होता है।

सवाल

(१) परिभाषाका अध्ययनमें क्या उपयोग है ? अगर बिना परिभाषाके ही वस्तुको समझाया जा सके तो कैसा ?

(२) जैनेन्द्रजीके मतसे साहित्यकी परिभाषा क्या है ? आपका इस परिभाषाके संबंधमें क्या ख़याल है ?

(३) जैनेन्द्रजीके मतसे साहित्यकी मूल प्रेरक अनुभूति कौन-सी है ? आपका इस विषयमें क्या ख़याल है ?

(४) आपने जो कहानियाँ, उपन्यास या कविताएँ पढ़ी हैं, उनमेंसे किसी एकके विषयमें बताओ कि उसमें कवि या रचयिताने मुख्य रूपसे अपनी कौन-सी अनुभूति पिरोई है और गौणरूपमें उसमें और कौन कौन-सी अनुभूतियाँ अभिव्यक्त हुई हैं। क्या वे प्रगतिशील जीवनकी अनुभूतियाँ हैं ?

साहित्यका उद्देश्य

स्व० प्रेमचदजी हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ कलाकार माने जाते रहे हैं इसलिए उनकी रचनाओंकी आलोचनाके लिए ज़रूरी है कि उनके साहित्यसंबंधी विचारोंको जाना जाय। अपने इस भाषणमें उन्होंने पहले हिन्दी-उर्दू साहित्यका ऐतिहासिक विहगावलोकन किया है। उनके मतसे हिन्दीके आरंभिक साहित्यकारोंका उद्देश्य विचारों और भावोंपर असर डालना नहीं, केवल भाषाका निर्माण करना था। इन आरंभिक साहित्यकारोंमें मीर अम्मन और लल्लूलालजीका नाम लिया गया है। इन लोगोंके रचित विगत युगके साहित्यको जीवनसे कोई मतलब न था। उस ज़मानेके कवियोंपर और उनके साहित्यपर व्यक्तिवादका रंग चढ़ा हुआ था। व्यक्तिवाद उस सिद्धान्तको कहते हैं जिसके अनुसार मनुष्यके संपूर्ण कार्य और रचनाएँ व्यक्तिगत आनंद, इच्छाओं, भावनाओंतक ही परिमित हों। देश, समाज आदि ऊँचे भाव हों ही नहीं। व्यक्तिवादी साहित्यमें कल्पनाओं और अलंकारोंकी भरमार और मनुष्यकी हलकी वासनाओंकी तुष्टि होती है।

प्रेमचन्द्रजीके मतसे "साहित्य उसी रचनाको कहेंगे जिसमें कोई सचाई प्रकट की गई हो और जिसमे दिल और दिमाग़पर असर डालनेका गुण हो।" उनके मतसे साहित्यकी सर्वोत्तम परिभाषा जीवनकी आलोचना है और उसका उद्देश्य हमारी अनुभूतियोंकी तीव्रताको बढ़ाना है। उनका खयाल है कि साहित्यको हमारे जीवनका प्रतिबिम्ब होना चाहिए।

प्रेमचन्दजीके मतसे नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र और साहित्यका उद्देश्य एक ही है, और वह उद्देश्य है कुछ शिक्षा देना। फ़र्क सिर्फ इतना ही है कि नीतिशास्त्र जब तर्कका सहारा लेता है, धर्मशास्त्र जब स्वर्ग-नरकका भय दिखाता है तब साहित्य हमारी अनुभूतियोंको तीव्र करके और सौन्दर्य प्रेमको जाग्रत करके उसके द्वारा वही काम कराता है। साहित्य और कलाके द्वारा हमारा सौन्दर्य-बोध इतना जाग्रत हो जाता है कि जो कुछ असुन्दर है, अकल्याणकर है, मनुष्यतासे रहित है वह हमारे लिए असह्य हो उठता है। कोई बुरा काम हम कर ही नहीं सकते।

प्रेमचंदजीके मतसे साहित्यमें स्वाभाविकता सबसे अधिक ज़रूरी चीज़ है, जो भी हम चित्रित करें वह हमारा अनुभूत किया हुआ हो, कल्पित नहीं। कुछ आलोचकोंने साहित्यको लेखकका मनोविज्ञानिक जीवन-चरित कहा है, प्रेमचंद-जीका ख्याल है, कि वह ऐसे ही साहित्यके लिए कहा गया है जिसमें लेखककी अनुभूतियाँ चित्रित हों, कल्पनाएँ नहीं।

दूसरी बात जिसपर कि प्रेमचंदजी विशेष ज़ोर देते हैं वह यह कि साहित्यमें जीवनके किसी एक ही पहलूपर साराका सारा ज़ोर नहीं डाल देना चाहिए। जैसे किसी आदमीका पेट, सिर या हाथ-पैर बहुत बड़ा हो और दूसरे अंग छोटे हों तो वह भद्दा दीखेगा। हमारे पुराने साहित्यमें जीवनके एक ही दो पहलुओंपर ज्यादा ज़ोर है,—उसमें श्रृंगारिक मनोभावों अथवा संसारकी नश्वरताका रंग चढ़ा हुआ है जो कि हमारे साहित्यके पतन-कालका चिह्न है। साहित्य और कलामें मानव-जीवनके सभी अंगोंका सामंजस्य अनिवार्य रूपसे आवश्यक है।

सौन्दर्यके सम्बन्धमें प्रेमचंदजीका विचार है कि सौन्दर्यमें सामंजस्यका महत्त्व सबसे ज़्यादा है। वे कहते हैं "हमारी रचना ही तत्त्वोंके समानुपातिक संयोगसे हुई है, इसलिए, हमारी आत्मा सदा उसी साम्यकी,—उसी सामंजस्यकी खोजमें रहती है। **साहित्य कलाकारके आध्यात्मिक सामंजस्यका व्यक्तरूप है और सामंजस्य ही सौन्दर्यकी सृष्टि करता है।**"

परन्तु, यह सामंजस्य केवल बाहरी आकृतिका ही नहीं होना चाहिए,—"संकुचित रूपपूजा, शब्दयोजना या भावनिबन्धका ही नाम कला नहीं है।" प्रेमचन्दजीका कहना है कि "उपवास और नग्नतामें भी सौन्दर्यका अस्तित्व सम्भव है, सौन्दर्य केवल रंगे होठों, गालों और भौहोंवाली कोमलांगी शहराती स्त्रीमें ही नहीं है,— उलझे हुए बालों, पपड़ियाँ पड़े हुए होठों और कुम्हलाए हुए गालों और बच्चेवाली

गरीब और देखनेमें रूपरहित स्त्रीमें भी है। ज़रूरत है उस आंतरिक सौन्दर्यको बाहर लानेकी।

सौन्दर्य और कलाके सम्बन्धमें प्रेमचन्दजीका दृष्टिकोण कुछ हद तक उपयोगितावादी भी है। उनका कहना है "आनन्द स्वतः एक उपयोगिता-युक्त वस्तु है, और उपयोगिताकी दृष्टिसे एक ही वस्तुसे हमें सुख भी होता है और दुःख भी। आसमानपर छाई हुई लालिमा निस्सन्देह बड़ी सुन्दर दीखती है; परन्तु, आषाढ़में अगर आकाशपर वैसी लालिमा छा जाय, तो वह हमें प्रसन्नता देनेवाली नहीं होती, उस समय तो हम आसमानपर काली काली घटाएँ देखकर ही आनन्दित होते हैं।"

देशको इस समय किस किस्मके साहित्यकी आवश्यकता है, इस सम्बन्धमें प्रेमचन्दजीका कहना है कि "हमें उस कलाकी आवश्यकता है जिसमें कर्मका सन्देश हो, जो हममें गति और संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं; क्यों कि अब और सोना मृत्युका लक्षण है।"

साहित्यकारोंको प्रेमचन्दजीने दो उपदेश दिये हैं: (१) साहित्यकार बननेके लिए प्रवृत्तिमात्र काफी नहीं है, उन्हें आधुनिक मनोविज्ञान, राजनीति, समाजशास्त्रसे परिचित होना चाहिए (२) अपने साहित्यिक कार्यको उन्हें समाजकी सेवा समझनी चाहिए और पैसेकी अपेक्षा उस सेवासे प्राप्त आनन्दकी विशेष कीमत करनी चाहिए।

अध्ययन

(१) यहाँ दिये हुए उद्धरण मूल लेखमें ढूँढ़िए और उन्हें मार्क करके आसपासकी वस्तु ध्यानसे पढ़िए।

सवाल

(१) मीर अम्मन और लल्लूलाल कौन थे? प्रेमचंदजीने उनका किस रूपमें ज़िक्र किया है?

(२) प्रेमचंदजीने साहित्यकी क्या परिभाषा की है? जैनेन्द्रजीकी और प्रेमचंदजीकी परिभाषाओंमें क्या कोई विरोध है? आपको किसकी परिभाषा विशेष पसंद है और क्यों?

(३) नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र और साहित्यमें क्या फर्क है?

(४) साहित्यमें किन दो बातोंके लिए प्रेमचंदजीने ज़ोर दिया है? सौन्दर्य और कलाके सम्बन्धमें प्रेमचंदजीके विचार लिखिए।

(५) प्रेमचंदजीके मतसे इस समय किस किस्मके साहित्यकी ज़रूरत है?

(६) साहित्यकारोंके लिए प्रेमचंदजीने क्या उपदेश दिया है?

विज्ञान और साहित्य

इस लेखमें जैनेन्द्रजीने अपने रूपकमय तरीकेसे साहित्य और विज्ञानका फर्क बताया है। जैनेन्द्रजीने बताया है कि:

(१) साहित्य अनुभूतिमय है, विज्ञान बुद्धिमय।

(२) साहित्यमें बाह्य जगत्को आत्मसात् करके,--उसे पचाकर रचनाके रूपमें बाहर निकाला गया होता है। विज्ञानमें वह जगत् केवल जाननेकी वस्तु ही रहता है। साहित्यमें मनुष्य सृष्टिके साथ अपनेको एकाकार अनुभव करता है, विज्ञानमें जुदा।

(३) साहित्यमें अभेदवृत्ति प्रधान होती है और विज्ञानमें विभेदवृत्ति।

सवाल

(१) साहित्य और विज्ञानमें क्या क्या फर्क है? 'वैज्ञानिक साहित्य' क्या साहित्य नहीं है?

साहित्य और समाज

साहित्य-सम्बन्धी इस विचारसे कि 'साहित्य अपने कालका प्रतिबिम्ब होता है' जैनेन्द्रजी संतुष्ट नहीं हैं। उनका कहना है कि आजकलका साहित्य, जिसे कि हम आधुनिक साहित्य कह सकते हैं, केवल दर्पणकी तरह नहीं होगा। "आधुनिक साहित्यकार समाजके प्रति विद्रोही है। साहित्य अब कुछ ऐसी वस्तु है जो समाजको प्रतिबिम्बित तो करे, पर चाटुतासे अधिक उसे चोट दे, और इस प्रकार समाजको आगे बढ़ानेका काम भी करे।"

पर जैनेन्द्रजीके चाहनेसे ही कुछ नहीं हो जाता और इस बातको वे जानते हैं,

इसलिए उन्होंने साहित्यके दो भेद कर दिये हैं: "एक तो वह जिसे समाजकी मर्ज़ेकी माँग बनाती है। दूसरा वह जो समाजके नेतृत्वके लिए सृष्ट होता है।"

सवाल

(१) साहित्यका आदर्श क्या होना चाहिए ? प्रेमचन्दजी और जैनेन्द्रजीके इस विषयमें क्या विचार हैं ?

(२) साहित्य और समाजके पारस्परिक सम्बन्धकी दृष्टिसे साहित्यके कितने और कौनसे भेद किये जा सकते हैं ?

कला और उसका प्रयोजन

काकासाहब कालेलकरकी महात्मा गाँधीके विचारोंका सुन्दर, साहित्यिक और ज़रूरत पड़नेपर शास्त्रीय रूपमें भाष्य करनेवालेके रूपमें बड़ी ख्याति है। आपने गुजरातीमें बड़े ही सुन्दर हृदयग्राही निबन्ध और यात्रा-विवरण लिखे हैं। कला और उसके प्रयोजनके संबंधमें उन्होंने यहाँ जो विचार व्यक्त किये हैं वे बिना किसी संशयके गाँधीजीके विचार माने जा सकते हैं।

इस लेखमें काकासाहबने साहित्य और कलाकी कोई स्पष्ट व्याख्या न देकर वह क्या है और क्या नहीं है, उसका कार्य क्या है और क्या नहीं है आदि बातें बताकर समझानेकी कोशिश की है। उनका कहना है कि "हृदयके अमूर्त भावोंको मूर्त वस्तुओंद्वारा व्यक्त करना ही कलाका मुख्य कार्य है।" ऐसी भाषा, अलंकारों और शब्दोंके ऐसे नियोजनके वे विरोधी हैं जो व्यक्त वस्तुकी ओरसे पाठकका चित्त हटाकर स्वयं अपनी भाषा और अलंकारोंके नियोजनकी ओर आकर्षित करें। उनके शब्द है "अगर ये मूर्त वस्तुएँ अमूर्त भावोंका वाहन बननेके बदले स्वयं अपनी ही तरफ मनुष्यका ध्यान खींचने लगें तो समझिए कि वहाँ कला मर चुकी।" कलाके द्वारा अभिव्यक्त भावों और हमारी आत्माके बीच भाषाके अलंकार, इन्द्रियासक्ति, विलासलोलुपता और अहंकार: इनमेंसे किसी भी वस्तुका व्यवधान उन्हें सह्य नहीं। जिस तरह मूर्तिकला मूर्तिकी भावभङ्गी है पर अगर उस भावभंगीकी पर्वा न करके हमारे मनमें वह किस धातुकी या पत्थरकी बनी है, इसीका विचार रहे तो वहाँ कलाका सर्वनाश हो

जाता है। इसलिए, इन्द्रियोंकी वासनाओंसे निर्लिप्त होकर तटस्थ भावसे ही हम कलाके आनन्दका पूरा अनुभव कर सकते हैं और उसका निर्माण कर सकते हैं।

काका साहबने अपनी, दूसरोंकी, तथा अपनी और दूसरोंकी दोनोंकी दृष्टिसे कलाके तीन भेद किये है: आत्मनेपदी, परस्मैपदी और उभयपदी। जिसमें अपने ही आनन्दका विचार हो वह आत्मनेपदी, अपने आनन्दको दूसरोंमें संक्रान्त करनेकी आतुरतासे जिसका निर्माण हो वह परस्मैपदी, तथा दोनों बातें जिसमें हों वह उभयपदी। काका साहबका खयाल है कि वास्तविक कला उभयपदी होती है।

आम तौरसे कलाके जो प्रयोजन बताये जाते हैं वे काका साहबने ९ गिनाये हैं। (१) कलाके लिए कला, (२) जीवनके लिए कला, (३) जीवनकी वास्तविकतासे छूट भागनेके लिए कला, (४) नीरस व्यवहारमेंसे छूटकर जीवनके आनन्दमें आश्रय लेनेके लिए कला, (५) सेवाके लिए कला, (६) आत्मप्राप्तिके लिए कला, (७) आनन्दके लिए कला, (८) विश्रामके लिए कला और (९) सृजनकी अदम्यवृत्तिको तृप्त करनेके लिए कला। आचार्य मम्मटने यश-धनसंचय-व्यवहारज्ञानआदि जो साहित्य-कलाके उद्देश्य माने हैं उनकी भी थोड़ी चर्चा की है।

काका साहबको ऊपर गिनाये उद्देश्योंमेंसे सिर्फ दोपर ऐतराज़ है। एक तो 'कलाके लिए कला'के सूत्रके आवरणके नीचे सदाचारका नाश करनेवाली बाज़ारू भद्दी चीज़ोंका निर्माण करने और उसे उच्च कलाके नामसे उद्घोषित करनेपर, दूसरे कायर बनकर जीवनकी वास्तविकताओंकी ओरसे पीठ फेरकर भाग खड़े होनेमें कलाका उपयोग करनेपर। पहले किस्मके कलाकारोंको वे कामोत्तेजक आकृतियाँ बनानेवाले कामुक राजाओं और नवाबोंके आश्रित वैद्यहकीमोंकी श्रेणीमें गिनते हैं तथा जीवनका वास्तविकतासे दूर भागनेके लिए कलाका आश्रय ढूँढ़नेवालोंको यह उपदेश देते हैं कि वे स्वयं उन कलाओंका अभ्यास करें। कलाके अन्तर्गत नग्नताके दर्शन करानेके पक्षमें भी वे हैं बशर्ते कि उसमें संयमसे काम लिया जाय।

स्वयं काका साहबके मतसे कलाका उद्देश्य आत्माका विकास साधना है। इस उद्देश्यके भीतर वे ऊपर गिनाये हुए तीसरे और चौथे उद्देश्योंको छोड़ कर बाकी सब उद्देश्योंका अन्तर्भाव कर लेते हैं।

अध्ययन

(१) ऊपर मूल लेखके जो जो उद्धरण दिये गये हैं तथा जिन जिन बातोंको दिया है उनकी चर्चा करनेवाले अंश मूल लेखमें खोजिए और उन्हें मार्क कीजिए।

सवाल

(१) काका साहबके मतसे ऐसी कौन-सी बातें या कार्य हैं जिनसे हम वास्तव कलाको पहिचान सकते हैं ? कलाका मुख्य कार्य क्या है ? साहित्य-कलामें भाषाका स्थान क्या है ? अलंकारोंका स्थान क्या है ? वास्तव कलाके उपभोग और निर्माणकी क्या शर्त है ?

(२) रचनामें किस बातके आ जानेसे कला मर जाती है ? भाषा और शब्दोंकी विलासिता क्या वस्तु है ? कलाके उपभोग और उसके निर्माणमें निर्लिप्त तटस्थ भावका क्या स्थान है ?

(३) आत्मनेपदी, परस्मैपदी और उभयपदी कलाको समझाओ।

(४) वास्तव कलामें नम्रताका दर्शन कराया जा सकता है या नहीं ? कराया जा सकता है तो कैसे ?

(५) काव्यके कौनसे नौ प्रयोजन इस लेखमें गिनाये गये हैं। इनके सिवाय और कौनसे प्रयोजनोंकी इस लेखमें चर्चा की गई है। इनमेंसे किन प्रयोजनोंकी किन बातोंके काकासाहब खिलाफ हैं ? उन प्रयोजनोंके सम्बन्धमें आपका खुदका क्या खयाल है ?

(६) कलाके प्रयोजनके संबंधमें स्वयं काकासाहबका क्या मत है ?

कहानी

इस लेखके शुरूमें प्रेमचंदजीने इतिहास और कथा-साहित्यकी तुलना की है जिसमें इतिहासको असत्य और कथा-साहित्यको सत्य बताया है। यहाँ सत्य-असत्यको मापनेकी कसौटी वस्तुकी सुंदरता, आनंददायकता और कल्याणकारकता है, अस्तित्व नहीं। " जो वस्तु आनन्द नहीं प्रदान कर सकती वह सुन्दर नहीं हो सकती और जो सुन्दर नहीं हो सकती वह सत्य भी नहीं हो सकती। साहित्य काल्पनिक वस्तु है पर उसका प्रधान गुण है आनन्द प्रदान करना और इसलिए वह सत्य है। "

इसके बाद प्रेमचंदजी पहले समयकी और आजकलकी कहानीमें फर्क बताते हैं। दोनोंमें मुख्य फर्क यह है कि जहाँ महाभारतमें तथा बाइबलमें आध्यात्मिक रहस्योंको समझानेके लिए कहानियोंका आश्रय लिया गया था, वहाँ आजकलकी कहानी बहुत कुछ मनोविज्ञानिक विश्लेषण होती है। उसमें कल्पना कम, अनुभूति अधिक होती है।

बहुतोंका खयाल है कि कहानीको दुनिया और समाजका यथार्थ चित्र होना चाहिए, पर प्रेमचंदजी इसके खिलाफ हैं। वे कहते हैं, "अगर हम यथार्थको हूबहू खींचकर रख दें, तो उसमें कला कहाँ है? कला केवल यथार्थकी नकलका नाम नहीं है। कला दीखती तो यथार्थ है, पर यथार्थ होती नहीं। जीवनमें बहुधा हमारा अंत उस समय होता है जब वाछनीय नहीं होता। पर कथामें ऐसा नहीं किया जा सकता। कलाका रहस्य भ्रान्ति है, पर वह भ्रान्ति जिसपर यथार्थका आवरण पड़ा हो।"

हमारे यहाँ कहानी-कला और साहित्यका यूरोपके जैसा विकास नहीं हुआ, इसका कारण प्रेमचदजी यह बताते हैं कि हमारे साहित्यशास्त्रियोंने उसपर जो पाबंदियाँ लगा दीं थीं (इन पाबंदियोमेंसे कुछको 'कविसमय' कहते हैं।) उनसे उसका विकास रुक गया।

आधुनिक तरीकेकी कहानियोंके विकासमे मुख्य कारण दुनियाकी आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ और समयाभाव भी हैं। प्रेमचंदजीके शब्दोंमें "अब वह ज़माना नही रहा कि हम बोस्ताने खयाल लेकर बैठ जायँ और सारे दिन उसीकी कुंजोंमें विचरते रहें।" आजकल हम कैसी कहानी चाहते हैं, इसके बारेमें प्रेमचंदजी कहते हैं, "हम कहानी ऐसी चाहते हैं जो थोड़ेसे थोड़े शब्दोंमें कही जाय,......उसका पहला ही वाक्य मनको आकर्षित कर ले और अंततक उसे मुग्ध किये रहे,......और इसके साथ ही कुछ तत्त्व हो।......यह सच है कि हम कहानीमें उपदेश नहीं चाहते, लेकिन विचारोंको उत्तेजित करनेके लिए, मनके सुंदर भावोंको जाग्रत करनेके लिए कुछ न कुछ अवश्य चाहते हैं।"

प्रेमचंदजीके मतसे हिन्दीमें २५–३० साल पहले आधुनिक कहानीका जन्म हुआ और यूरोपमें करीब १०० साल हुए तब हुआ। उच्च श्रेणीके लोगोंमें भी विविध व्यापारोंके कारण समयाभाव कहानीके जन्मका मुख्य कारण हुआ।

प्रेमचंदजीके मतसे उत्तम कहानीकी कसौटी तीन बातोंसे की जाती है:

उपन्यास

प्रेमचंदजीने अपने इस लेखमें बताया है कि उपन्यास संपूर्ण मानव-चरित्रका चित्र होता है। उपन्यास और कहानीमें फर्क यह है कि कहानीमें जहाँ किसी व्यक्ति या व्यक्तियोंका सिर्फ एक ही पहलू चित्रित किया जाता है,—उस पहलूकी झाँकी मात्र दिखाई जाती है, वहाँ उपन्यासमें उसी व्यक्ति या व्यक्तियोंका चरित्र अधिक पूर्ण रूपमे चित्रित किया जाता है।

विभिन्न व्यक्तियोंमें गुणों, दोषों, विचारों, आचरणों आदिका आधार लेकर समानताओंमें विभिन्नताएँ और विभिन्नताओंमें समानताएँ बतलाना चरित्र-चित्रण कहलाता है।

चरित्रचित्रणके संबंधमें साहित्यकारोंमें दो वाद हैं; यथार्थवाद और आदर्शवाद। यथार्थवाद मानव-चरित्रके बुरे पहलूको इस तरह चित्रित करना अपना फर्ज समझता है जिसमें कि उसका बुरा पहलू दीख पड़े। आदर्शवाद केवल अच्छे पहलूको ही चित्रित करता है। प्रेमचन्दजी इन दोनों वादोंके खिलाफ हैं, वे आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं। वे मानते थे कि साहित्यमें मनुष्यके अच्छे और बुरे दोनों पहलुओंको चित्रित किया जाय पर अच्छे पहलूमे अधिक रंग भरा जाय।

प्रेमचन्दजीके मतसे साहित्यके द्वारा किसी विशेष विचारका प्रचार करना बुरा नहीं है।

कथावस्तु या प्लाटके सम्बन्धमें प्रेमचन्दजीने डिकेंस, जार्ज इलियट आदिके उदाहरण देकर बताया है कि लेखकको प्रेरणा सब कहींसे मिल सकती है बशर्ते कि वह अपनी आँखें चारों ओर खुली रखे।

रचना-शक्तिके बारेमें प्रेमचंदजीका मत है कि वह हरेक व्यक्तिमें होती है। लिखनेमें पहले कुछ झिझक होती है पर बादमें वह मिट जाती है।

उपन्यासकारके लिए निरीक्षण शक्ति जरूरी है पर निरीक्षण-शक्ति होनेसे ही कोई उपन्यासकार नहीं हो सकता। निरीक्षणशक्ति बढ़ानेके लिए डायरी पासमें रखी जाय और उसमें नोट करनेकी आदत डाली जाय तो अच्छा।

उपन्यासकारके लिए थोड़ी बातको विस्तारके साथ और लम्बी-चौड़ी बातको थोड़ेमें कहना आना चाहिए और यह भी विवेक रखना चाहिए कि किस बातको विस्तारसे कहे और किसे थोड़ेमें, किसे लिखे और किसे छोड़ दे, तथा रहस्यकी बात धीरे धीरे किस तरह खोले।

अध्ययन

ऊपरकी बातें जिन स्थानोंसे ली गई हैं उनका विशेष अध्ययन करो।

सवाल

१ उपन्यास और कहानीमें क्या फर्क होता है ?

२ चरित्रचित्रण किसे कहते हैं ?

३ चरित्र-चित्रणके सम्बन्धमें कौन कौनसे वाद हैं ? प्रेमचंदजी क्या मानते थे ?

४ उपन्यासकारमें कौन-कौनसी शक्तियोंका होना जरूरी है ? लेखकोंको प्रेरणा और कथावस्तु, कहाँसे मिलती है ? निरीक्षण-शक्तिका उपन्यासमें क्या महत्त्व है और वह कैसे प्रकट होता है ?

उपन्यासका विषय

समाज, नीति, दर्शन, विज्ञान, पुरातत्त्व आदि सभी विषयोंको उपन्यासमें स्थान है। पर प्रेमचंदजी नीचे लिखी बातोंको उपन्यासमें आवश्यक मानते हैं :

(१) कल्पनाशक्ति।

(२) रचनाशैलीकी सरलता। उपन्यासमें वार्तालाप जितना अधिक हो, रचयिताको अपनी तरफसे जितना कम लिखना पड़े उतना अच्छा।

(३) उपन्यासकी प्रत्येक घटनाका मूल या असली ढाँचेसे सम्बद्ध होना।

(४) उपन्यासमें उन्हीं घटनाओंका लाया जाना जो प्लाटमें सहायक हों, चरित्र-चित्रणमें सहायक हों या माधुर्य बढ़ानेवाली हों। जहाँ तक बन सके घटनाएँ ऐसी हों जो हमारे भावोंकी गहराई तक पहुँचें।

(४) चरित्र-चित्रणकी स्पष्टता, गहराई और विकासोन्मुखता। उपन्यासके चरित्रोंमेंसे किसीका विकास रुक जाय तो उसे उपन्याससे निकाल देना चाहिए। ऐसा चरित्र ‘ असफल चरित्र ’ कहलाता है।

(५) उपन्यासमें रचयिताके मनोभावों, विचारों और आदर्शोंका दर्शन।

भविष्यके उपन्यासोंके विषयमें प्रेमचंदजीका मत है कि अभी तकके उपन्यासोंके लेखक तो “झूठको सच बनाकर दिखाना चाहते हैं, भविष्यमें सचको झूठ बनाकर दिखाना होगा। भविष्यका उपन्यास कल्पना कम, सत्य अधिक होगा। ”

१२

उपन्यास

प्रेमचंदजीने अपने इस लेखमें बताया है कि उपन्यास संपूर्ण मानव-चरित्रका चित्र होता है। उपन्यास और कहानीमें फर्क यह है कि कहानीमें जहाँ किसी व्यक्ति या व्यक्तियोंका सिर्फ एक ही पहलू चित्रित किया जाता है,—उस पहलूकी झाँकी मात्र दिखाई जाती है, वहाँ उपन्यासमें उसी व्यक्ति या व्यक्तियोंका चरित्र अधिक पूर्ण रूपमें चित्रित किया जाता है।

विभिन्न व्यक्तियोंमें गुणों, दोषों, विचारों, आचरणों आदिका आधार लेकर समानताओंमें विभिन्नताएँ और विभिन्नताओंमें समानताएँ बतलाना चरित्र-चित्रण कहलाता है।

चरित्रचित्रणके संबंधमें साहित्यकारोंमें दो वाद हैं; यथार्थवाद और आदर्शवाद। यथार्थवाद मानव-चरित्रके बुरे पहलूको इस तरह चित्रित करना अपना फर्ज़ समझता है जिसमें कि उसका बुरा पहलू दीख पड़े। आदर्शवाद केवल अच्छे पहलूको ही चित्रित करता है। प्रेमचन्दजी इन दोनों वादोंके खिलाफ हैं, वे आदर्शोन्मुख यथार्थवादी हैं। वे मानते थे कि साहित्यमें मनुष्यके अच्छे और बुरे दोनों पहलुओंको चित्रित किया जाय पर अच्छे पहलूमें अधिक रंग भरा जाय।

प्रेमचन्दजीके मतसे साहित्यके द्वारा किसी विशेष विचारका प्रचार करना बुरा नहीं है।

कथावस्तु या प्लाटके सम्बन्धमें प्रेमचन्दजीने डिकेंस, जार्ज इलियट आदिके उदाहरण देकर बताया है कि लेखकको प्रेरणा सब कहींसे मिल सकती है बशर्ते कि वह अपनी आँखें चारों ओर खुली रखे।

रचना-शक्तिके बारेमें प्रेमचंदजीका मत है कि वह हरेक व्यक्तिमें होती है। लिखनेमें पहले कुछ झिझक होती है पर बादमें वह मिट जाती है।

उपन्यासकारके लिए निरीक्षण शक्ति जरूरी है पर निरीक्षण-शक्ति होनेसे ही कोई उपन्यासकार नहीं हो सकता। निरीक्षणशक्ति बढ़ानेके लिए डायरी पासमें रखी जाय और उसमें नोट करनेकी आदत डाली जाय तो अच्छा।

उपन्यासकारके लिए थोड़ी बातको विस्तारके साथ और लम्बी-चौड़ी बातको थोड़ेमें कहना आना चाहिए और यह भी विवेक रखना चाहिए कि किस बातको विस्तारसे कहे और किसे थोड़ेमें, किसे लिखे और किसे छोड़ दे, तथा रहस्यकी बात धीरे धीरे किस तरह खोले।

अध्ययन

ऊपरकी बातें जिन स्थानोंसे ली गई हैं उनका विशेष अध्ययन करो।

सवाल

१ उपन्यास और कहानीमें क्या फर्क होता है ?

२ चरित्रचित्रण किसे कहते हैं ?

३ चरित्र-चित्रणके सम्बन्धमें कौन कौनसे वाद हैं ? प्रेमचंदजी क्या मानते थे ?

४ उपन्यासकारमें कौन-कौनसी शक्तियोंका होना जरूरी है ? लेखकोंको प्रेरणा और कथावस्तु, कहाँसे मिलती है ? निरीक्षण-शक्तिका उपन्यासमें क्या महत्त्व है और वह कैसे प्रकट होता है ?

उपन्यासका विषय

समाज, नीति, दर्शन, विज्ञान, पुरातत्त्व आदि सभी विषयोंको उपन्यासमें स्थान है। पर प्रेमचंदजी नीचे लिखी बातोंको उपन्यासमें आवश्यक मानते हैं :

(१) कल्पनाशक्ति।

(२) रचनाशैलीकी सरलता। उपन्यासमें वार्तालाप जितना अधिक हो, रचयिताको अपनी तरफसे जितना कम लिखना पड़े उतना अच्छा।

(३) उपन्यासकी प्रत्येक घटनाका मूल या असली ढाँचेसे सम्बद्ध होना।

(४) उपन्यासमें उन्हीं घटनाओंका लाया जाना जो प्लाटमें सहायक हों, चरित्र-चित्रणमें सहायक हों या माधुर्य बढ़ानेवाली हों। जहाँ तक बन सके घटनाएँ ऐसी हों जो हमारे भावोंकी गहराई तक पहुँचें।

(४) चरित्र-चित्रणकी स्पष्टता, गहराई और विकासोन्मुखता। उपन्यासके चरित्रोंमेंसे किसीका विकास रुक जाय तो उसे उपन्याससे निकाल देना चाहिए। ऐसा चरित्र 'असफल चरित्र' कहलाता है।

(५) उपन्यासमें रचयिताके मनोभावों, विचारों और आदर्शोंका दर्शन।

भविष्यके उपन्यासोंके विषयमें प्रेमचंदजीका मत है कि अभी तकके उपन्यासोंके लेखक तो "झूठको सच बनाकर दिखाना चाहते हैं, भविष्यमें सचको झूठ बनाकर दिखाना होगा। भविष्यका उपन्यास कल्पना कम, सत्य अधिक होगा।"

अभ्यास

उपर्युक्त बातें लेखके जिन स्थानोंमें स्पष्ट की गई हैं उन्हें ध्यानसे पढ़िये।

सवाल

(१) उपन्यासके संबंधमें प्रेमचंदजीका टेकनीक क्या है? वे उसमें किन बातोंको आवश्यक समझते हैं? उनके किसी उपन्यासकी आलोचना करके बताइये कि उन्होंने कितनी दूर तक इन बातोंका अपने उस उपन्यासमें समावेश किया है और किस तरह?

(२) उपन्यासमें किन घटनाओंको शामिल करना चाहिए, इस विषयमें प्रेमचंदजीका मत क्या है?

(३) उपन्यासके चरित्रचित्रणके बारेमें प्रेमचंदजीके क्या विचार हैं?

ऐतिहासिक उपन्यास

रवीन्द्रनाथ ठाकुर इस ज़मानेके भारतवर्षके ही क्या, सारी दुनियांके सर्वश्रेष्ठ कलाकार थे। ऐतिहासिक उपन्यासोंमें,—नाटकों इत्यादिमें भी अकसर जो इतिहासकी विकृति हो जाती है उसके संबंधमें रवि बाबूने इस लेखमें विचार किया है।

जिन व्यक्तियोंको हम प्रत्यक्ष आजकलके समाजमें देखते हैं और अपने सामाजिक उपन्यासोंमें जिनका चित्रण करते हैं, उन्हीं व्यक्तियोंका चित्रण हम ऐतिहासिक उपन्यासमें भी करते हैं, फर्क सिर्फ इतना ही होता है कि हम उस चित्रणको एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भर दे देते हैं। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि दे देने मात्रसे समाजिक उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास बन जाता है। **चिरन्तन मानव-समाजको एक ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि दे देनेसे जो एक विशेष रसकी अवतारणा होती है उसे रविबाबूने 'ऐतिहासिक रस' कहा है।** यह रस उन अनिर्दिष्ट रसोंमेंसे है जिनका उल्लेख प्रसिद्ध नौ रसोंमें नहीं किया गया।

रविबाबूका कहना है कि इतिहासमें कोई घटना घटी हो या न घटी हो, चित्रित व्यक्ति ऐतिहासिक पुरुष हो या न हो,—इन बातोंसे हमें कोई मतलब नहीं। हमें सिर्फ इतना ही देखना है कि रचयिता अपनी रचनामें वास्तविक

ऐतिहासिक रसकी अवतारणा करनेमें समर्थ हुआ है या नहीं। अगर वह इसमें सफल हुआ है तो उसे अवश्य पढ़ना चाहिए, फिर चाहे इतिहासके ज्ञानके लिए हमें इतिहासको अलगसे क्यों न पढ़ना पड़े।

रवि बाबूका यह भी कहना है कि नित्य होनेवाली नई नई ऐतिहासिक खोजोंके बीचमें यह भी तो कभी नहीं कहा जा सकता है कि मौजूदा इतिहासमें सभी बातें सत्य हैं। बल्कि, चिरन्तन मानव-समाजका चित्रण होनेके कारण इतिहासकी अपेक्षा साहित्यको ही क्यों न अधिक सच माना जाय?

शेक्सपियर, स्काट, आदि महाकवियोंकी रचनाओंमें कई बातें इतिहासके खिलाफ हैं, रामायण-महाभारतमें भी न सभी बातें सच हैं और न सभी ऐतिहासिक, फिर भी, इस कारण उनका मूल्य किसी तरह कम नहीं होता।

अध्ययन

लेखके उपर्युक्त बातोंवाले हिस्सोंको विशेष ध्यानसे पढ़िए।

सवाल

(१) ऐतिहासिक रस क्या है? क्या नौ रसोंमें इसकी भी गिनती है?

(२) ऐतिहासिक उपन्यासोंमें बहुत-सी बातें इतिहासके खिलाफ आ जाती हैं, इस विषयमें रविबाबूका क्या मत है?

नाटक

द्विजेन्द्रलाल राय आधुनिक समयके भारतवर्षके सर्वश्रेष्ठ नाटककार माने गये हैं। उन्होंने इस लेखमें नाटककी एक कसौटी पेश की है जिसके ऊपर हम प्रत्येक नाटकको कस सकते हैं।

पहले तो वे महाकाव्य, नाटक और उपन्यासमें अंतर बतलाते हैं। महाकाव्यमें चरित्रचित्रण प्रसंगमात्र होता है, कविका उद्देश्य 'कुछ वर्णन करना' होता है। उपन्यासमें चरित्र चित्रण होता अवश्य है पर उसका मुख्य उद्देश्य चरित्र-चित्रण करना नहीं है, केवल सुन्दर कहानीकी रचना करना होता है। परंतु नाटकमें चरित्र-चित्रण ही सबसे मुख्य होता है।

नाटकमें सबसे मुख्य वस्तु कथाभागका ऐक्य मानी गई है। इसका मतलब

यह है कि एक नाटकमें एक ही विषय प्रधान वर्णनीय होना चाहिए और उस *विषयकी परिणति या फल*में ही उसकी समाप्ति होनी चाहिए, तथा उसमें चित्रित अवान्तर विषयोंका उद्देश्य भी उसी एक विषयको परिस्फुटित करना होना चाहिए। नाटककी गति नदीके प्रवाहके ऐसी होती है, अन्यान्य उपनदियाँ उसमें आकर मिलती हैं और उसे परिपुष्ट करती हैं।

दूसरी बात जो नाटकमें आवश्यक है वह है प्रत्येक घटनाकी सार्थकता। नाटकमें ऐसी कोई घटना या दृश्य नहीं होना चाहिए जिसके न रहनेपर भी नाटकका परिणाम वैसा ही दिखाया जा सकता हो। इस तरह नाटककार जितनी ही अधिक घटनाओंका समावेश कर सकेगा उतनी ही अधिक उसकी क्षमता प्रकट होगी।

तीसरी वस्तु नाटकमें कवित्व है, पर इसके बगैर भी काम चल सकता है, पर इसके होनेसे विशेष सौन्दर्य आ जाता है।

चौथी वस्तु जो कि नाटकके लिए जरूरी है वह है घटनाओंके घात-प्रतिघातसे उसके कथाभागका अग्रसर होना। अर्थात्, एक घटनाके घटित होते समयके पात्रोंके विशिष्ट आचरणके कारण दूसरी घटना पैदा होना और दोनो घटनाओंके संघर्षसे तीसरी घटना और उसके कारणरूप पात्रोंके आचरणका पैदा होना। तथा यही क्रम आगे भी चलना।

प्रत्येक मनुष्यके जीवनकी तरह नाटकमें भी कुछ बाधाएँ आती हैं, पर नाटकमे इन बाधाओंका अधिक जोरदार होना जरूरी है। जिस नाटकमे इस बाधाको प्रधान-चरित्र नाँघ जाते हैं उसे कामेडी कहते हैं, जिसमें नहीं नाँघ पाते उसे ट्रेजिडी कहते हैं।

नाटकको उच्चश्रेणीका बनानेके लिए यह अनिवार्य है कि उसके चरित्रोंमें अन्तर्द्वन्द्व,—विपरीत वृत्तिसमूहका समवाय बतलाया जाय।

अखीरी बात जो नाटक, उपन्यास कहानी आदि सभी साहित्यमें एकसी लागू है वह है उसमें स्वाभाविकताका होना,—अस्वाभाविक जँचनेवाले भाव, घटनाएँ, विचार आदि न आने देना।

अध्ययन

पूरे लेखको अच्छी तरह ध्यानसे पढ़िये, तथा ऊपर दी हुई बातोंवाले अंशोंको मार्क कीजिए।

सवाल

१ महाकाव्य, नाटक और उपन्यासमें क्या अन्तर होता है ?

२ नाटकमें कौन-सी बातें जरूरी मानी गई हैं और कौन सी बातें ऐसी हैं जिनका होना अच्छा है पर न होनेसे कोई नुकसान नहीं।

३ नाटकके उत्तम होनेके लिए कौन सी बात अनिवार्य है? जो नाटक आपने पढ़े हैं, उनके उदाहरण देकर यह समझाइए।

४ नीचे लिखी बातें समझाइए: कथाभागका ऐक्य, घटनाओंका घात-प्रतिघात, घटनाओंकी सार्थकता, ट्रेजिडी, कामेडी और स्वाभाविकता।

कविता और कवि

अनूपजीका 'सिद्धार्थ' महाकाव्य प्रसिद्ध है। इस लेखमें उन्होंने कविताके सम्बन्धमें अपने कुछ विचार काव्यमय रूपकमय,— ढंगसे लिखे हैं।

अनूपजीका कहना है कि "मनुष्य सचेतन वादन-यंत्र है जिसपर सांसारिक घटनाओंके घात-प्रतिघात अपना अलग ही स्वर छेड़ते हैं।" इस कथनसे अनूपजीका मतलब यह है कि जिस तरह सितार, वीणा आदि वादन-यन्त्रोंपर उँगलियों और हवाके घात-प्रतिघातका असर पड़ता है और उससे वे बज उठते हैं, उसी तरह, सांसारिक घटनाओंके घात-प्रतिघातका असर मानव-हृदयपर पड़ता है जिससे वह बज उठता है,—उच्छ्वसित हो उठता है। मानव-हृदयका यह उच्छ्वास,— यह बज उठना ही विभिन्न ललित कलाओंके द्वारा प्रकट होता है जिसमेंसे काव्य भी एक है।

सांसारिक घटनाओंका ऐसा असर होनेका कारण अनूपजीके मतसे हमारे संस्कार हैं। काव्यके उपजीव्य इन संस्कारोंको वे "सामाजिक बंधन अथवा नियम" कहते हैं, "जिनके वशवर्ती होकर मनुष्य-समाज एक विशेष परिस्थितिमें पहुँच जाता है।" "समता, एकता, विभिन्नता, विरोध, पारस्परिक आदान-प्रदान आदि भाव ...जो समाजकी उच्चस्थितिके द्योतक हैं तथा जिनके कारण अनुभूतिमें आनन्द, कलामें सौन्दर्य, विचारमें सत्यता और पारस्परिक आदान-प्रदानमें प्रेम दीख पड़ता है।"

मानव-हृदयरूपी वादन-यंत्रसे जो भी कुछ उच्छ्वसित होकर निकलता है उस प्रत्येक वस्तुमें अनूपजीके शब्दोंमें "एक नियम,—एक Rhythm, संगति तारतम्य या आरोहावरोह" होता है। तथा जिस वस्तुमें यह नियम या संगति होती है वह सब इस सुसंगतिमय उच्छ्वासका कारण होती है। यह नियम नृत्य, गान, आदि सभी कलाओंके लिए समानरूपसे लागू है। सुन्दर प्राकृतिक दृश्य, सुन्दर रूप, सुन्दर मनोभाव, सुन्दर विचार आदि सुन्दर इसीलिए होते हैं कि उनमें यह सुसंगति मौजूद होती है और इसीलिए वे सुसंगतियुक्त हृदयोच्छ्वासोंको जन्म देते हैं जिन्हें कि हम काव्य, साहित्य, संगीत आदि कहते हैं। अनूपजी काव्यकी सीमित व्याख्या इन शब्दोंमें करते हैं: "काव्य शब्दोंका अथवा भावोंका एक विशेष आरोहावरोह, संगति, संक्रम या तारतम्य है जो मानव हृदयके किसी गूढ़ अन्तस्तलसे उत्पन्न होता है।"

अनूपजी जब कहते हैं कि "कविता एक ऐसी शक्ति है जो गद्य और पद्य दोनोंमें अनुभूत हो सकती है, जो केवल शब्दार्थोंमें ही नहीं वरन् स्वरोंमें भी वर्तमान रहती है और जो नादके अतिरिक्त उन दृश्योंसे भी अपना हृदय दिखलानेके लिए फूट निकलती है जो वास्तु एवं स्थापत्य द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं" तब उनका मतलब इस सुसंगति, rhythm या harmony से ही होता है। इसीको वे 'सत्यं शिवं सुदरं' कहते हैं, क्यों कि यही वस्तुके भीतरका सत्य है, यही कल्याणकारी है और इसीके कारण सुंदर वस्तुमें सौन्दर्य है। जब वे कविताको 'संगीतमय विचार' 'कविताको' 'कविके अन्तर्नादका बाह्य रूप' कहते हैं तब भी उनका भाव इसी सुसंगतिसे होता है। 'संगीतमय'का भाव 'संगतिमय'से है।

अलंकारोंकी आवश्यकताके सम्बन्धमें अनूपजीका कहना है कि "साधारण शब्द इतने निर्बल होते हैं कि वे गम्भीर और उदार भावोंका भार वहन नहीं कर सकते। साथ ही अमूर्त भावोंको साकार करनेका और साधन ही नहीं है, इसलिए अलंकारोंका साधन अनिवार्य हो जाता है।" पर अलंकारोंके अधिक प्रयोगके वे विरोधी हैं। छन्दके बारेमें अनूपजी कहते हैं "छन्द कविके अन्तर्नादका बाह्य स्वरूप है (होना चाहिए)।"

अनूपजी महाकविके लक्षण बताते हैं: कल्पनाद्वारा उत्तेजित घटनाचक्र और घटनाचक्रद्वारा उद्भासित कल्पना महाकविके लक्षण हैं, विचार और भाव द्वितीय श्रेणीके कविके और उक्ति तृतीय श्रेणीके लक्षण हैं।"

मौलिकताके संबंधमें अनूपजीका कहना है हरेक महाकवि अपनी रचनामें अपन पूर्वकवियोंकी दी हुई सामग्रीका पूरा पूरा उपयोग करनेको स्वतंत्र हैं। मौलिकता उपयोग करनेके अपने ढंगमें मानी गई है, न कि वस्तुमें। अगर ढंगमें नवीनता न हो तो कविमें मौलिकता नहीं मानी जा सकती। और अगर ढंगमें नवीनता है तो पुराने कवियोंकी उक्तियाँ, उपमाएँ आदि सब कुछ ले लेनेपर भी कोई दोष नहीं होता।

कविके विषय और क्षेत्रके बारेमें अनूपजीके विचार हैं: "जो कुछ उच्च और महान् है, जो कुछ हमारे हृदयको रुचिकर है वह सब काव्यका विषय है।... कविता एक ऐसा आदर्श है जो विकृतको भी सुन्दर और सुन्दरको सुन्दरतर बना देता है।...सर्वोच्च मस्तिष्कवाले मनुष्योंके सर्वोपरि विचारोंका नाम कविता है।" अनूपजी जब कहते हैं "उसकी (कविकी) वाचालता उच्च होती है, और निःशब्दता उससे भी अधिक गंभीर और उच्चतर" तब वे काव्यमें ध्वनिके सिद्धान्तको स्वीकार करते हैं। ध्वनि-सिद्धान्तमें जिस काव्यमें एक ऐसे अर्थकी ओर इशारा किया जाय जो शब्दोंमें सीधे तौरपर प्रकट नहीं किया गया हो वह काव्य उत्तम माना गया है।

काव्यका उद्देश्य, अनूपजीके मतसे, वह 'ज्ञान' और 'प्रकाश' उस अन्तरिक्षसे खींच लाना है जहाँ "भाव और विचार पर तक नहीं मार सकते" तथा सत्यप्रेम, देश-प्रेम, भक्ति, मित्रता आदि सद्गुणोंकी स्थापना करना है। उनके खयालसे अगर काव्य न होता तो इन सद्गुणोंकी कोई सद्गुण ही नहीं मानता। "जीवनमें क्या रह जाता अथवा मृत्युके अनन्तर लोग किस बातकी आशा करते?"

अध्ययन

जहाँ जहाँके उद्धरण दिये गये हैं, उन स्थानोंके आसपासका विशेष अध्ययन कीजिए।

सवाल

१ मनुष्यको वादनयन्त्रका रूपक क्यों दिया गया है और वह कहाँ तक ठीक है?

२ अनूपजीकी काव्यकी सीमित व्याख्या क्या है?

३ अलंकारों और छन्दके विषयमें अनूपजीकी क्या राय है?

४ कवियोंकी तीन श्रेणियाँ कौन-सी हैं? महाकवि किसे कहना चाहिए?

५ 'मौलिकता' के विषयमें अनूपजीके क्या विचार हैं ?
६ काव्यके विषय क्या क्या होने चाहिए या हो सकते हैं ?
७ काव्यके उद्देश्यके बारेमें लेखकके क्या विचार हैं ?
८ काव्यमें ध्वनिका सिद्धान्त क्या है ?

रसोंका संस्कार

इस लेखमें काका साहब कालेलकरने रस-सिद्धान्तपर नये दृष्टि कोणसे विचार किया है और यह दृष्टिकोण गाँधीवादका दृष्टिकोण है।

काका साहबके मतसे जो स्त्रवित हो,—जो बहे उसे 'रस' कहते हैं। इसकी उत्पत्तिके बारेमें काका साहब और प्राचीन आचार्योंके मतमें कोई फर्क नहीं है। जो हमारे भावों या रसोंकी उत्पत्तिके कारण हैं उन्हें विभाव कहते हैं। विभाव दो किस्मके होते हैं : एक आलम्बन, दूसरा उद्दीपन। हम अगर कांग्रेस या खादी प्रदर्शिनीमें जावें तो राष्ट्रीय झण्डे, खादी आदि उद्दीपन विभाव हैं, नेता लोग आलम्बन विभाव, उनके व्याख्यान आदिमें मुख और शरीरकी चेष्टाएँ संचारी भाव हैं और इन सबका परिणाम उनके प्रति अथवा देशके प्रति जो भक्ति पैदा होती है वह रस है। सुस्वादु भोजनको चखनेसे जिस तरह हमारे मुँहकी लाला-ग्रंथियोंमेंसे लारके झरनेकी अनुभूति होती है और उस लालाको हम रस कहते हैं और जिन पदार्थोंके कारण वह उत्पन्न होती है उनके भेदसे हम उस रसमें भी भेद मानने लगते हैं, यह सब उसी तरह है। वैसे रस एक ही है क्यों कि जुदे जुदे भोजनसे जो लार पैदा होती है वह एक ही है।

रसोंकी संख्याके बारेमें प्राचीन आचार्योंमें बहुत-सा मतभेद है। भरत मुनि रस-सिद्धान्तके आदि-व्याख्याता माने जाते हैं। एक तरफ तो वे कहते हैं कि जितने भाव हैं उतने ही रस हैं और भाव अनन्त हैं इसलिए रस भी अनन्त हैं दूसरी तरफ वे द्रुहिण नामके आचार्यका मत भी उल्लिखित करते हैं जिसने आठ रस माने हैं। द्रुहिणने जो रस माने थे वे हैं शृंगार, रौद्र, वीर, बीभत्स, हास्य, करुण, भयानक और अद्भुत। बादके आचार्योंने वत्सल, शांत, प्रेयस्, लौल्य, भक्ति, कार्पण्य और उदात्तको भी रस माना है। भवभूति आदि कुछ ऐसे भी आचार्य हुए हैं जो रस सिर्फ एक ही मानते हैं और वह है करुण, शृंगार या शांत। इस समय रसोंको अनन्त माननेकी प्रवृत्ति जोरोंपर है। रवि बाबू

' ऐतिहासिक रस ' का उल्लेख करते है, काकासाहब ' समाहित रस ' की सूचना करते हैं । ' अनिर्वचनीय रस ' और ' उज्ज्वल रत्न' की भी चर्चा कम नहीं है ।

पुराने जमानेसे यौन-वृत्तियोंका वर्णन भी शृंगार-रसके अन्तर्गत माना जाता आया है । काकासाहबका कहना है कि शृंगाररससे ऐसे वर्णनोंको निकाल देना चाहिए। महायुद्धके समय अन्न-वस्त्रविहीन भूखे यूरोपके नाटकोंमें खाने-पीनेके दृश्य प्रिय समझे जाने लगे थे पर बादमें इन्हें पतनकी निशानी माना गया, उसी तरह यौन-चेष्टाओंका वर्णन भी हमारे पतनकी निशानी है । यह हमारी यौन-क्षुधाको अत्यन्त गर्हितरूपमें पेश करती हैं । शृंगार-रसमें इस यौन-वृत्तियोंको निकाल देनेके बाद जो कुछ बच रहेगा उसे काकासाहब ' प्रेम-रस ' का नया नाम देते हैं । इसमें अपने व्यक्तित्वको खोकर दूसरेमें तादात्म्यभावकी अनुभूति मुख्य मानी है और उसके अन्तर्गत सेवा आदि भावोंको भी ग्रहण किया है ।

वीररसमें भी काकासाहब प्रतिपक्षीके प्रति द्वेष, क्रूरता, अपहरण और अहंकारके प्रदर्शनको निकालकर उसकी जगह कर्तव्य-बुद्धिके साथ आत्म-बलिदानके भावको रखना चाहते हैं ।

करुण-रस भी विलाप और वियोग-वर्णन तक ही सीमित न रहना चाहिए । उसके अंतर्गत प्रमुख रूपसे सामाजिक अन्यायों और अनौचित्योंका वर्णन आना चाहिए ।

हास्यरसमेंसे नर्मवचन, चाटूक्तियाँ और छिपी शृंगारिक चेष्टाएँ नहीं होनी चाहिए ।

काकासाहबके मतसे अद्भुत-रसकी उत्पत्ति भव्यता और अज्ञेयतामेंसे होनी चाहिए। भव्यताको देखकर अपनी विभूतिको भी उतनी ही विराट् बनानेकी इच्छा ही अद्भुत रसकी भावना है । भव्यताको देखकर मनुष्यमें जो भाव उदित होता है वह भयका भाव है । भव्य वस्तुके साथ अपना मुकाबला करते करते जब मनुष्य थक जाता है तब रौद्ररस प्रकट होता है । सन्तोष और आत्मसमर्पणका भाव ही कलामें शान्तरस है ।

अभ्यास

पूरे लेखको ध्यानसे पढ़िए ।

सवाल

१ रसोंके बारेमें काकासाहबका नया दृष्टिकोण क्या है ? पुराने आचार्योंने कितने रस माने हैं, काकासाहब कितने मानते हैं ? रसोंकी पुरानी मान्यताओंमें वे क्या क्या सुधार पेश करते हैं ?

२२

हिन्दीके मर्मी कवि

यह लेख रविबाबूने कबीर, दादू आदि हिन्दीके संत-कवियोंके बारेमें लिखा है।

प्रारंभमें रविबाबू कहते हैं कि काव्यमें सबसे बड़ी वस्तु उसमें अन्तर्निहित सत्य होता है, अलंकार नहीं;—रस, दर्द या अनुभूति होती है, कौशलका परिमाण नहीं। अलंकारोंकी फैशन तो समय समयपर बदलती रहती है पर जो वस्तु नहीं बदलती वह है भीतरका रस,—भीतरका सत्य। सन्त कवियोंकी रचनाओंमें यही सत्य,—यही रस स्रवित हुआ है।

जो वस्तु विना प्रयत्नके हमारे हृदयसे सहज स्वाभाविक रूपमें निकलती है वही सत्य होती है। इन संत कवियोंकी रचनाएँ ऐसी ही हैं। भगवानके प्रति प्रेमका रस जो इन संत कवियोंके गीतोंमें मिलता है वह यूरोपके बड़े बड़े कवियोंकी रचनाओंमें नहीं है। पूजा-पाठों मंत्र-तंत्रोंमें तो वह हो ही कहाँसे सकता है क्यों कि वे प्रयत्न-साधित हैं।

जैनेन्द्रजीने अपने पहले लेखमें जिस अभेदानुभूतिको साहित्यकी प्रमुख अनुभूति माना है उसीको रविबाबू 'सत्य' कहते हैं। सारी दुनियाको अपनेसे जुदी अनुभव करना असत्य है, उसीको रविबाबू असृष्टि कहते हैं और वह है ज्ञानका विषय। ज्ञान या विज्ञान हमेशा प्रत्येक वस्तुका पृथक्करण Analysis करके देखता है, सबमें भेद देखता है पर हृदय सबको अपने भीतर अनुभव करता है, सबमें अभेद देखता है। अभेद ही काव्यका सत्य है। रविबाबूके शब्दोंमें "ऐक्य ही सत्यका रूप है और आनन्द ही उसका रस है।"

रविबाबूने जिस ऐक्यको सत्यका रूप माना है उन्हींके शब्दोंमें "वह वस्तुके पिण्डमें नहीं है,—वह उसकी गहराईमें अन्तर्निहित एक ऐसे सत्यमें है जो समस्त विश्व-भुवनमें एकको दूसरेके साथ निगूढ़ सामंजस्यमें धारण किये हुए है।" अर्थात् वह सत्य सारे जगत्में व्याप्त है,—वही ईश्वर है, भगवान् है।

पर उस भगवानको हृदयमें ही और वह भी अभेदकी अनुभूतिके रूपमें पकड़ा जा सकता है,—शास्त्रोंमें नहीं पाया जा सकता, विभिन्न सामाजिक और आचार-व्यवहारोंमें भी नहीं पाया जा सकता। सन्तकवि ज्यादातर नीची अन्त्यज जातियोंके थे जिनके लिए उच्च जातियोंके बाहरी पूजाके मंदिर और शास्त्र बन्द थे इसीलिए 'अन्तरके मिलन-मन्दिरकी चाबी उन्होंने खोज ली।'

इन सन्त कवियोंके दलोंको जो थोड़ेसे बंगालमें शेष रह गये हैं, 'मरमिया' कहते हैं। इन लोगोंकी रचनाओंमें बहुत कुछ समानता होती है, पर चूँकि, जो कुछ ये कहते हैं वह शास्त्रमेंसे चुना हुआ नहीं होता, इसलिए उनकी वाणीका रस कभी सूखता नहीं। ये लोग जिस ईश्वरके गीत गाते हैं वह किसी संप्रदाय-विशेषका ईश्वर नहीं, शास्त्र-वाक्यका ईश्वर नहीं होता क्यों कि उसके सहारे एक दूसरेका सिर फोड़ना सहज नहीं है।"

उसका अनुभव करनेके लिए किसी पुरोहित या पादरीकी बीचकी दलालीकी जरूरत नहीं है।

रवि बाबूका कहना है जिन्हें इस सत्य-परमात्माके अमृत-रसका रसबोध नहीं हुआ उन्हें ही स्वर्ग-नरकादिके प्रलोभनोंकी ज़रूरत होती है। इन सन्त कवियोंने शास्त्र-निर्मित पत्थरके बेड़ेसे भक्तोंके मनको मुक्ति दी, मन्दिरोंमेंसे पशु-बलिके कलंकको धो डाला और जहाँ कहीं भी आज हम हिन्दू-मुसलमानोंको प्रेमसे एक दूसरेके साथ रहते देखते हैं वह इन सन्त कवियोंके प्रभावका ही परिणाम है।

भारतवर्षका समाज भेद-बहुल है, इस कारण, अनादि कालसे यहाँके सभी महापुरुषोंका यही प्रयत्न रहा है कि यह भेद नष्ट हो: 'भारतकी श्रेष्ठ साधना है बाहरके आचारको अतिक्रम करके अन्दरके सत्यको स्वीकार करना।' ये सन्त-कवि उसी परम्पराके महापुरुष हैं। इन्होंने ऐक्य-स्थापनके जो प्रयत्न किये थे वे किसी राजनीतिक सुविधाके लिए नहीं जैसे कि आजकल कांग्रेसी या हिन्दू-मुसलिम राजनीतिज्ञ करते हैं, बल्कि, उन्होंने आन्तरिक आत्मीयताके कारण ही हिन्दू-मुसलमानोंको एक समझा था।

इस समय हमारे देशमें हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक समस्या विकट रूप धारण किये जाती है, हमारे देशके प्राण उसमें दग्ध हुए जा रहे हैं। ऐसे समय इन सन्त कवियोंकी वाणीके अधिकाधिक प्रचारकी आवश्यकता है। यही एकमात्र स्थायी उपाय है जिससे कि यह समस्या सुलझ सकती है। "प्राण जहाँ दग्ध हो गये हैं वहाँ उन्हें रस-प्रवाहसे ही बचाया जा सकता है।...मनुष्यके चित्तकी मृत्युसे रक्षा करनेके लिए वैकुण्ठके अमृतरस प्रस्रवणपर ही हमारे मर्मी कवियोंने दृढ़ आस्था रक्खी थी,—किसी बाह्य आचारके समझौतेपर नहीं। वे लोग जिस रसधाराको वैकुण्ठसे खींच लाये थे, हमारे देशकी सामाजिक बालूके तलमें

(सन्त साहित्यके रूपमें) वह छिपी हुई पड़ी है, नष्ट नहीं हो गई है।" उसीके उद्धार और प्रचारकी ज़रूरत है।

अध्ययन

इस लेखमें जहाँ जहाँके उद्धरण दिये हैं उन उन स्थानोंका विशेष अध्ययन कीजिए।

सवाल

१ अलंकारोंके सम्बन्धमें रविबाबूकी क्या राय है? काव्यके भीतरकी असल वस्तु कौन-सी है?

२ साहित्यमें 'सत्य' के क्या माने हैं? प्रेमचंदजी जिसे सत्य कहते हैं और रवि बाबू जिसे सत्य कहते हैं, क्या उसमें कोई फर्क है?

३ हिन्दीके सन्त या मर्मी कवि किस जातिके थे और उन्होंने क्या कार्य किया?

४ भारतवर्षकी सामाजिक स्थितिका संत-कवियोंके साहित्यपर क्या प्रभाव पड़ा?

५ संत-साहित्यका आजकल क्या उपयोग हो सकता है?

प्राचीन और नवीन

बख्शीजीका मार्मिक आलोचकके तौरपर खूब नाम है। पुराने और नवीन ढंगके साहित्यमें जो फर्क है और उनके पीछे जो विचार हैं उन्हें बातचीतके रूपमें बड़ी खूबीके साथ उन्होंने इस लेखमें पेश किया है।

इसमें जगदीशको रोमण्टिक रुचिके आलोचकके रूपमें लाये गये हैं। ऐसे लोगोंके लिए कथामें अद्भुतता, उसके चरित्रोंमें असाधारणता आकर्षणका,—रसका विषय होती है। इनके खयालसे मनुष्य-जीवन या मनुष्यका मन कोई रासायनिक पदार्थ नहीं है और न साहित्यकार रासायनिक ही जो साहित्यमें उसका खण्ड खण्ड करके तत्त्व निकाल सकें। साहित्यकी सृष्टि मनुष्यमें विराट् या महत्-भाव भरनेके लिए ही होनी चाहिए, इसलिए उसमें महान् पुरुषोंकी,—ऐसे पुरुषोंकी जिनके आचरणमें तिलभर भी कहीं दोष न हो, जो धीरोदात्त हों, अवतारणा होनी चाहिए। इनका कहना है कि आधुनिक साहित्य, जिसमें कि विराट् भावको चित्रित करनेकी कोई कोशिश नहीं की जाती, मनुष्य-जातिकी पतित अवस्थाका

सूचक है। देखा जाता है कि जो जाति उन्नतिके विजय-पथपर होती है उसके साहित्यमें महत्-चरित्रोंकी ही अवतारणा होती है।

महेश चरित्रगत विश्लेषणके पक्षपाती हैं। उनका कहना है कि आनन्दकी अवतारणा ही साहित्यका उद्देश्य है, सत्यके अनुसंधानसे आनन्दकी उपलब्धि होती है और चरित्र-वैचित्र्यके विश्लेषणसे ही हम सत्यको जान सकते हैं। साहित्यमें असाधारण और महत् चरित्रोंकी अवतारणासे कुतूहलका उद्दीपन भर हो सकता है, सहानुभूति उत्पन्न नहीं होती। "चरित्रमें जहाँ दुर्बलता है वहीं हम लोगोंकी सहानुभूति उत्पन्न होती है। महत्तासे केवल विस्मय, आतङ्क या भक्ति आदि भावोंका उद्रेक भले ही हो, पर पाठक उन्हें अपना नहीं सकता।" सत्य सदैव सरल, सुंदर और साधारण होता है। विजयोन्मादसे मत्त बड़ी बड़ी जातियोंको भी अपने इतिहासमें एक अलक्षित शक्तिके सन्मुख हार माननी पड़ी। दुनियामें कोई भी जाति, कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जो हमेशा जीतता ही गया हो, जिसे उस दैवने नहीं पटका हो। असाधारण चरित्रोंका उद्भव भी साधारण लोगोंमेंसे ही हुआ करता है इसलिए साधारण मनुष्योंका चरित्र उपेक्षणीय नहीं है। महान् और असाधारण व्यक्तियोंको भी दैवने जो पटकनी दी वह इन्हीं साधारण व्यक्तियोंके द्वारा दी थी।

लाल रणजीतसिंह बातचीतका प्रारंभ करते हैं और शंकाएँ उठाते हैं, बख्शीजी स्वयं पात्र बनकर सबका समन्वय और समाधान करते हैं। वे कहते हैं कि महान् लेखकोंका काम साधारण या असाधारण चरित्रोंका चित्रण नहीं है, मौलिक चरित्रोंकी सृष्टि करना है। इस मौलिकताका या चरित्रोंकी सृष्टि-शक्तिका नाम ही प्रतिभा है और आधुनिक लेखकोंमें इसकी कमी नहीं है। प्राचीन और आधुनिक साहित्यमें हमें जो फर्क नज़र आता है वह चरित्रचित्रणका उतना नहीं है जितना कि रूपका है। महान् चरित्रोंकी अवतारणा आज भी उतनी ही की गई है जितनी कि पहले। प्राचीन महाकाव्योंका स्थान आजके उपन्यासोंने ले लिया है और उपन्यास लिखनेका तरीका वह नहीं है जो महाकाव्य लिखनेका था। यही कारण है कि हमें यह भ्रम होता है कि आजकलके साहित्यमें महत् चरित्रोंकी सृष्टि नहीं होती।

महेश बीचमें बतलाते हैं कि यह मौलिकता नामकी जो वस्तु है वह निरपेक्ष नहीं है। जो भावनाएँ कविके काव्यकी उपाजीव्य होती हैं, यह जरूरी है कि

वे समाजमें पहलेसे ही प्रचलित हों, इसलिए मौलिकताकी भी एक हद माननी पड़ेगी। बख्शीजी इसका कुछ दूर तक विरोध करते हुए कहते हैं कि नहीं, साहित्यमें प्रचलित भावनाओंकी अवतारणाएँ ही नहीं होतीं, पथप्रदर्शन भी होता है;—यह भी बतलाया जाता है कि कौन-सी नई भावनाएँ उसमें आनी चाहिए। वर्तमान साहित्यका आदर्श है उन सामाजिक और राजनीतिक समस्याओंका हल करना जिनके कारण समाजमें अशांति फैली हुई है। और उद्देश्य है व्यक्ति-स्वातंत्र्यकी रक्षा करना और उसके मार्गमें जो कृत्रिम अश्रेयस्कर रुकावटें हैं उन्हें दूर करना।

इतनेपर भी जो लोग प्राचीन साहित्य और वस्तुके भक्त हैं और आधुनिकको हीन समझते हैं उनके लिए कहा है, "सच्ची बात यह है महेशबाबू, कि अतीतका सिर्फ गौरव ही अवशिष्ट रहता है, उसमें जो क्षुद्रता होती है, उसे काल नष्ट कर देता है। इसीसे अतीतसे तुलना करनेपर हमें वर्तमान गौरवपूर्ण प्रतीत नहीं होता।"

अध्ययन

१ सम्पूर्ण लेखको एक बार फिर ध्यानसे पढ़िए।

सवाल

१ प्राचीन और नवीन साहित्यमें क्या भेद है? प्राचीन काव्योंका चरित्र-चित्रण किस बातका सूचक है?

२ साहित्यमें रोमांचपसंद लोगोंके पक्षमें क्या क्या बातें कही जा सकती हैं, चरित्र-चित्रणको प्रधान माननेवालोंके पक्षमें क्या क्या कहा जा सकता है?

३ मौलिकताके विषयमें आपका क्या ख्याल है? क्या आप मानते हैं कि आजकलके साहित्यमें महान् चरित्रोंकी उद्भावना नहीं हुई है? अपनी बात उदाहरणोंसे स्पष्ट कीजिए।

४ आधुनिक साहित्यका उद्देश और आदर्श क्या है?

५ प्राचीनता और प्राचीन वस्तुके प्रति हमारे हृदयमें सद्भाव क्यों होता है फिर चाहे वह कितनी ही निकम्मी क्यों न हो? क्या यह सद्भाव या पूर्वग्रह साहित्यकी परीक्षा करते समय रास्तेमें आता है?

शकुन्तला और उत्तररामचरितमें नाटकत्व

'नाटक' शीर्षक लेखमें नाटकोंको जाँचनेकी कसौटी देकर द्विजेन्द्रबाबूने उस आधारपर भारतीय साहित्यके दो सर्वप्रसिद्ध नाटकोंकी आलोचना की है। इस आलोचनामें नीचे लिखी बातें ध्यान योग्य हैं :

(१) दुष्यंतके साथ शकुंतलाका प्रेम (अंकुर, वृद्धि और परिणाम) दिखाना ही शकुंतला नाटकका विषय है। इस नाटकके सब दृश्य, चरित्र, घटनाएँ इसी प्रेम-कथाको प्रस्फुटित करनेके लिए ही अवतारित हुई हैं। थोड़ेमें कहा जा सकता है कि शाकुंतलमें कथा-भागका ऐक्य है। उत्तर-रामचरित्रमें यह कथा-भागका ऐक्य बिल्कुल नहीं है। उसका कोई विषय ही नहीं है, उसका उद्देश्य कुछ दिखाना,—राम-सीताका वियोग और मिलन दिखाना-मात्र है। बहुत-सी घटनाएँ और दृश्य ऐसे हैं जिनके न रहनेपर भी यह उद्देश्य सिद्ध हो सकता था।

(२) शाकुंतलका कथाभाग घातप्रतिघातसे अग्रसर होता है, उत्तररामचरितका कथाभाग इस तरह अग्रसर नहीं होता। उसमें सहस्ररजनीचरितकी तरह कहानीके भीतर कहानी चलती है।

(३) शाकुन्तलमें कई जगह अन्तर्विरोध है पर वह पूरी तरह कहीं स्पष्ट नहीं हुआ है। उत्तररामचरितमें अन्तर्विरोध बिल्कुल नहीं है। पंचम अंकमें जब शकुन्तला राजाके यहाँ जाती है वहाँ अन्तर्विरोध ज्यादा स्पष्ट हुआ है।

(४) उत्तररामचरितमें कोई भी चरित्र परिस्फुट नहीं हुआ है। शाकुन्तलमें चरित्रचित्रण बहुत ही कुशलतापूर्ण है।

(५) केवल कवित्वमें उत्तररामचरित शाकुन्तलसे उच्च श्रेणीका है।

अध्ययन

शाकुंतल और उत्तररामचरितके हिन्दी या मातृभाषाके अनुवाद पुस्तकालयसे लेकर पढ़िए और उसके बाद इस लेखको पढ़िए।

सवाल

(१) शाकुंतल और उत्तररामचरितकी आलोचना अपने शब्दोंमें लिखिए।

वर्तमान हिन्दी कविता

पं० हजारीप्रसादजी द्विवेदी हिन्दीके सर्वश्रेष्ठ समालोचकोंमेंसे एक हैं। इस लेखमें उन्होंने हिन्दीके कुछ आधुनिक कवियोंकी आलोचना की है।

द्विवेदीजीके मतसे वर्तमान हिन्दी कवितामें तीन वस्तुएँ प्रमुख हैं : कल्पना, चिन्तन और अनुभूति।

पाथेयके लेखक सियारामशरण गुप्त चिन्तनशील हैं। वे चिंतनसे आरंभ करते हैं और चिंतित वस्तुको अपने भीतर अनुभव करनेकी कोशिश करते हैं। नीरजामें विचारका नहीं, वेदनाका प्राधान्य है। उसकी लेखिका महादेवीजी अनुभूति-प्रधान कवि हैं।

पर महादेवी और सियारामशरणकी अनुभूतियोंमें फर्क है, एक तो सहजसिद्ध अयत्नसाधित है दूसरी यत्नसाधित। सियारामशरण चिंतनसे शुरू करते हैं और अनुभूतिमें समाप्त करते हैं, महादेवीजी अनुभूतिसे शुरू करती हैं और प्रायः अनुभूतिमें ही समाप्त करती हैं। पर महादेवी कहीं कहीं चिंतनसे अपनेको रोक नहीं सकी हैं। चिंतनसे अनुभूतिकी ओर जाना कविके लिए उचित है पर अनुभूतिसे चिंतनकी ओर जाना अनुचित।

रामकुमार वर्माकी चित्ररेखा इनसे हीन कोटिकी है। 'किन्तु' 'तो भी' आदि शब्दोंका उपयोग बताता है कि वे अनुभव करनेकी कल्पना करते हैं, अनुभव नहीं करते। कल्पना और अनुभूतिके बीच उनका चिंतन सेतुका काम करता है। यह कल्पनाका चिंतन-साधित रूप है जो पाण्डित्य कहा जा सकता है, कवित्व नहीं।

रेणुकाके कवि दिनकरजी सौ फीसदी कल्पनाके कवि हैं। उनकी कल्पना बड़ी मधुर है पर उसमें अनुभूतिकी छायामात्र भी नहीं है। जोश, उमंग और स्वप्न हैं। कल्पना मोहक और भाषा चपल है, कथन चोट करनेवाला होता है।

आजकलकी सामाजिक और आर्थिक स्थितिका, नवीन विज्ञानों और शास्त्रोंसे परिचयका, नवीन आदर्शों और दर्शनोंका इन सभी कवियोंकी रचनाओंपर प्रभाव पड़ा है और वह बहुत कुछ कविताको हानि पहुँचानेवाला है। प्राचीन काव्य-शास्त्रोंके आधारसे द्विवेदीजीने यह भी बताया हैं कि यह विरोध कहाँ कहाँपर है। एक विशेष अर्थकी कवितासे जहाँ पहले नायिकाको स्वैरविहारार्थिनी माना जाता

था उसी अर्थकी कवितामें आज हम ईश्वरप्रेम देखते हैं। वासनाओंको उच्चतर भूमिमें प्रतिष्ठित करनेके लिए पहले राधा-कृष्णके प्रेमका सहारा लिया जाता था पर आज ईश्वरविषयक कवितामें भी ईश्वर-वाचक कोई शब्द रखना पसंद नहीं किया जाता। प्राचीन प्रेम-रस या उज्ज्वल-रसकी जगह आज 'अनिर्वचनीय रस'की प्रतिष्ठा हुई है। उस रहस्यमय सत्यकी ओर सियारामजीने अपनी कवितामें इशारा किया है पर महादेवीजीकी कवितामें वह इशारा बिना यत्नके ही अपने आप हुआ है।

अनुभयनिष्ठ रति अर्थात् इकतर्फा प्रेमको प्राचीनोंने काव्यका विरोधी माना है, पर नवीन इसकी पर्वा नहीं करते। प्राचीन समयमें ईश्वर, धर्म आदिपर कवियोंका आंतरिक विश्वास था पर आजकल वह विश्वास कल्पित ही होता है।

अध्ययन

मारे लेखको ध्यानसे पढ़िए और पुस्तकालयसे 'पाथेय,' 'नीरजा,' 'चित्र-रेखा' और 'रेणुका' लेकर उन्हें भी पढ़िए।

सवाल

१ द्विवेदीजीने किस कसौटीको लेकर यह आलोचना लिखी है? यहाँ जो बातें कही गई हैं उनके उदाहरणकी कविताएँ खोजिए।

प्रेमचन्दजीकी कला

आलोचनाकी जो कई पद्धतियाँ हैं उनमें आजकल ज़्यादा प्रचलित पद्धति चित्र-पद्धति है। जिस तरह जब हम किसी चित्रको,—खास तौरसे बड़े तैल-चित्रको कुछ दूरसे देखते हैं तब ही उसकी विशेषताओंका अनुभव कर पाते हैं, उसी तरह इस पद्धतिमें वस्तुकी आलोचना उसे कुछ दूरसे देखकर की जाती है। प्रेमचन्दजीकी कलाको परखनेके लिए जैनेन्द्रजी इसी पद्धतिकी सिफारिश करते हैं।

पहली बात जो जैनेन्द्रजीके ध्यानमें आती है कि वह यह है प्रेमचन्दजीकी रचनाओंमें "जगह जगह ऐसे वाक्यांश बिखरे भरे पड़े हैं, जिन्हें जी चाहता है कि आदमी कण्ठस्थ कर ले। उसमें ऐसा कुछ अनुभवका मर्म भरा रहता है।"

दूसरी बात जिसकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है वह है उनकी स्पष्टता। " उनकी बात निर्णीत, खुली, निश्चित होती है।"

तीसरी बात उनका हर जगह पाठकको विश्वासमें ले लेना है। " प्रेमचंदजी ऐसे विश्वास, मैत्री और परिचयके साथ सब कुछ बतलाते हुए पाठकको...ले जाते हैं कि पाठकको धक्का-सा कुछ भी नही लगता, वह...ग्रंथकारकी जानकारी पर, कुशलतापर और अपने प्रति उसके विश्वासपर जगह जगह मुग्ध हो जाता है।"

चौथी बात यह है कि उपन्यासमें प्रेमचंदजी हमेशा पाठकके भावोंकी रक्षा करते चलते हैं, कभी वे अनुभूतिको इतनी तीव्रतामें नहीं उभाड़ते कि उसे रुलाई आ जाय। शरत् और रवि बाबूमें यह बात नहीं है। " हमारे भावोंकी रक्षा करनेकी इन्हें (शरत् और रवि बाबूको) बिलकुल चिंता नहीं है; जैसे हमारा जी दुखता है या नहीं दुखता, उन्हें पर्वा ही नहीं।"

पाँचवीं विशेषता यह है कि जहाँ रवीन्द्र, शरद् आदि लेखकोंकी चीज़ोंमें यह बतलाना मुश्किल है कि उनका सौन्दर्य किस खास स्थलमें है वहाँ प्रेमचंदजीकी रचनाओंमें वाक्य वाक्यमें सौन्दर्य होता है। हरेक वाक्य उनका कसा, अर्थपूर्ण और अपने आपमें पूर्ण होता है।

छठी पर जैनेन्द्रजीके मतसे सबसे बड़ी वस्तु जिसके कारण कोई रचना अमर होती है वह है उसमें प्रेमका प्रकाश। " सनातन ऐक्यको प्राप्त करनेकी चेष्टाका नाम है प्रेम...यह प्रेम तत्कालको पार कर जितना चिरस्थायी और शरीरके प्रतिबंधको लाँघकर जितना उत्सर्गजीवी होता है, उतना ही वह...शुद्ध, वास्तविक और आनन्दमय होता है। लेकिन, काल और प्रदेशकी रेखाओंसे घिरकर यह प्रेम पूर्ण निर्विकार...नहीं हो पाता।" द्रव्य काल, प्रदेशादि वस्तुओंके समूहका नाम ही माया है जो उस प्रेमको निर्विकार नहीं होने देती। " प्रेमचन्दजी सत्यकी इस द्वन्द्वावस्थाको सूक्ष्म दृष्टि और सहानुभूतिके साथ चित्रित करते हैं और इस द्वन्द्वमें वह जिस प्रेमभावकी प्रतिष्ठा करते हैं वह देहातीत होता है। यही सजीव प्रेम अर्थात् सत्य...उनकी कृतिको मरने नहीं देगा।" प्रेम ही सत्य है, ईश्वर है, और इसी प्रेमके प्रकाशसे पूर्ण कलाको जैनेन्द्रजी Art for God's sake अर्थात् ' ईश्वराभिमुख कला ' कहते हैं।

अध्ययन

सारे लेखको ध्यानसे तीन बार पढ़ें ।

सवाल

१ प्रेमचन्दजीकी रचनाओंकी कौन-सी छह विशेषताएँ जैनेन्द्रजीने बतलाई हैं ? प्रेमचन्दजीकी आलोचनामें किस पद्धतिका अवलम्बन किया गया है ?

२ वह सबसे बड़ी विशेषता क्या है जिसके कारण किसी लेखककी कृति अमर हो सकती है ?

३ Art for God's sake या ईश्वराभिमुख कलाका क्या मतलब है ?

आलोचना कैसे करनी चाहिए ?

'साहित्य-शिक्षा' के अध्ययन-अध्यापनका उद्देश्य जिन लोगोंमें थोड़ी-बहुत भी रचना-शक्ति है उनको इस बातकी शिक्षा देना है कि वे कैसे अपनी रचनाओंको अधिक सुसंस्कृत और परिष्कृत कर सकते हैं तथा जिनमें वह प्रतिभा नहीं है, उन्हें यह बताना है कि जिन रचनाओंको वे पढ़ें उनके विषयमें अपने विचार वे कैसे व्यक्त कर सकते हैं। किसी रचनाके विषयमें अपने विचार व्यक्त करनेको 'आलोचना करना' कहते हैं। जिस तरह प्रतिभा ऐसी यांत्रिक वस्तु नहीं है कि चाहे जितनी पैदा की जा सके वैसे ही आलोचनाका भी कोई राज-मार्ग नहीं है, फिर भी, परीक्षार्थी विद्यार्थियोंके हितके लिए हम आगे ऐसे सवाल देते हैं, किसी रचनाको आगे रखकर जिनके उत्तर कुछ विस्तृत रूपमें देनेसे उस रचनाकी आलोचना अपने आप हो जायगी। यदि विद्यार्थी निबन्ध-रचना पद्धतिसे परिचित है और वह उस परिचयका उपयोग करे तो यह आलोचना बहुत अच्छी हो सकती है। यह जरूरी नहीं है कि इनमेंसे प्रत्येक सवालका जवाब दिया ही जाय और न यही जरूरी है कि उत्तर उसी क्रमसे हो जिस क्रमसे यहाँ सवाल दिये गये हैं। आलोचनाका अच्छा-पन इस बातपर निर्भर करता है कि वह रोचक हो, उसे पढ़नेमें मन लगे। सिर्फ एक ही दो सवालोंके उत्तरसे भी अच्छी आलोचना बन सकती है। अगर आलोचना संक्षिप्त चाही गई है तो थोड़ेसे चुने हुए सवालोंका जवाब देना ही काफी होगा। जहाँ तक हो सके ऐसे ही सवालोंके जवाब देना चाहिए जिनेके कि जवाब उस रचनाके भीतर तक घुसते हों, जो पाठकके मनपर एकाएक असर डालें। अगर विस्तृत आलोचनाकी जरूरत है तो ज्यादासे ज्यादा सवालोंका अधिक विस्तृत उत्तर देना चाहिए।

शुरूमें ऐसे सवाल हैं जिनके उत्तर देना सभी किस्मकी साहित्यिक रचनाके लिए सामान्य हैं, चाहे वह कहानी हो, उपन्यास हो, नाटक हो, काव्य हो, चाहे निबंध हो। इसके आगे कहानी उपन्यास, नाटक आदिके लिए अलग अलग सवाल हैं। ये सब सवाल साहित्य-शिक्षाके लेखोंके आधारपर ही निर्मित हैं।

प्रत्येक साहित्यिक रचनाके लिए

१ आलोच्य-वस्तु साहित्यिक रचना है या सूखा गद्य-निबंध, पद्य-निबंध या लेख ? लेखकका परिचय दीजिए।

२ यदि यह साहित्यिक रचना है तो यह जरूरी है कि वह किसी रसका संचार करे,—उसमें अनुभूति हो,—बताइए वह कौन-सी मूल अनुभूति है जिसने कि लेखकको रचना करनेके लिए प्रेरित किया ? इस मूल अनुभूतिके सिवा और कौन-सी अनुभूतियाँ हैं जिनको कि लेखकने अपनी रचनामें पिरोया है ?

३ रचना कथात्मक है, चिंतनात्मक है या केवल अनुभूति-मय है ?

४ रचना शैली कैसी है ? भाषा कैसी है, मुहाविरोंका प्रयोग कैसा है ? अलंकारोंका प्रयोग कैसा है ? उदाहरणके तौरपर जो कथाएँ दी हैं वे कैसी हैं, कविताएँ दी हैं वे कैसी हैं ? ये सब वस्तुएँ अनुभूतिको ठीक ठीक व्यक्त करनेमें सहायक हुई हैं या नहीं ? क्या ये अनुभूतिको ठीक ठीक व्यक्त न करके केवल अपनी ओर ही तो हमारा ध्यान आकृष्ट नहीं करतीं और इस तरह कलाकी हत्या तो नहीं करतीं ?

५ जो अनुभूति या अनुभूतियाँ इस रचनामें अभिव्यक्त हुई हैं क्या वे वास्तवमें अनुभूतियां हैं या अनुभूतिकी केवल कल्पनाएँ हैं ? अगर आप लेखकसे परिचित हों तो बताइए कि किस तरह यह रचना उसके जीवनसे सम्बद्ध है ?

६ अनुभूतिको ठीक ठीक अभिव्यक्त करके क्या यह रचना किसी रसका संचार करती है ? अगर वह ऐसा करती है तो वह कौन-सा रस है ?

७ क्या इस रचनामें ऐसा कोई भाव या अर्थ है जो शब्दोंमें सीधी तौरपर व्यक्त नहीं किया गया, जिसकी तरफ सिर्फ इशारा किया गया है ? रचना पढ़नेके उपरात आपके मनमें कोई विचार-परम्परा पैदा होती है ? आप उस विचार-परम्पराको थोड़में लिखिए।

८ आपके खयालसे यह रचना किस कोटिकी है ? किसी ऐसी ही अन्य रचनाके साथ इसकी तुलना कीजिए।

कहानी, उपन्यास और नाटकके लिए

(ऊपर जो सात सवाल दिये गये हैं उनके उत्तर तो देना ही चाहिए उनके सिवाय नीचेके सवालोंका उत्तर भी देना चाहिए)

(८) रचनाके विभिन्न अंगों : कथा-वस्तु, चरित्र-चित्रण, घटना-विन्यास आदिमें सामंजस्य है या नहीं ? कोई वस्तु ज़रूरतसे ज्यादह और कोई ज़रूरतसे कम तो नहीं है ?

(९) रचनाके पात्रोंके साथ हम अभेद-अनुभूति कर पाते हैं या नहीं ? रचनाके कोई-से भी दो पात्र हूँ बहू एक-से तो नहीं हैं ? रचनाके विभिन्न पात्रोंके चरित्रोंमें क्या भेद हैं और क्या समानताएँ हैं ?

(१०) रचनामें घटनाओंका उपयोग केवल कुतूहल बढानेके लिए ही किया गया है या किसी चरित्रके किसी विशेष पहलूको स्पष्ट करनेके लिये ? उदाहरण देकर समझाइए।

(११) लेखक मनोविज्ञान, समाजशास्त्र और राजनीतिसे परिचित है या नहीं ? इस परिचयका मौजूदा रचनामें किस प्रकार उपयोग हुआ है ? क्या रचनाका आधार कोई मनोविज्ञानिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक सचाई है ?

(१२) रचनामें क्या किसी ऐसे मौलिक चरित्रकी सृष्टि की गई है जिसके समान कोई चरित्र हिन्दी या आपकी मातृभाषाके किसी लेखकने पहले कभी नहीं खींचा ? क्या वह चरित्र आदर्श-चरित्र कहा जा सकता है ? उसके प्रति हमारे हृदयमें सहानुभूति पैदा होती है या विस्मयका भाव ?

(१३) हमारे समाजमें प्रचलित कौन-सी भावनाएँ और संस्कार इस रचनाके उपजीव्य हैं ? यह रचना किस हद तक हमारे समय और समाजको प्रतिबिम्बित करती है ? लेखकमें निरीक्षण-शक्ति कैसी है ? क्या वह हमारे समाजके बारीक बारीक गुण-दोषोंको देख पाया है ? वह देखना उसका कैसा है, सुधारककी तरह धिक्कार-पूर्ण या कलाकारकी तरह सहानुभूतिपूर्ण ?

(१४) रचनामें सभी बातें देश, काल और पात्रके अनुकूल हैं या नहीं ? कोई अस्वाभाविकता, अनौचित्य तो नहीं आ पाया ?

कहानीके लिए

(ऊपर जो १४ सवाल दिये गये हैं उनके उत्तर देनेके सिवाय नीचे लिखे सवालोंका उत्तर और भी देना चाहिए।)

(१५) यह कहानी जितने शब्दों और वाक्योंमें कही गई है, क्या उससे भी कम शब्दों और वाक्योंमें उतने ही असरकारक ढंगसे कही जा सकती है ?

(१६) कहानीका पहला वाक्य और पैरेग्राफ हमें कहानीको पूरा पढ़नेके लिए आकृष्ट करता है या नहीं और यह आकर्षण अंततक कायम रहता है या नहीं ?

(१७) इस कहानीमें जो घटनाएँ आई हैं उनसे चरित्रोंके कौनसे पहलू स्पष्ट हुए हैं ?

(१८) यह कहानी हमारे मनमें विचारोंको उत्तेजित करती है या सुला देती है ?

उपन्यासके लिए

(ऊपर जो सवाल दिये हैं उनके सिवाय इनका उत्तर दीजिए ।)

(१९) इस उपन्यासकी प्रत्येक घटना मूल या असली ढाँचेसे सम्बद्ध है या नहीं ?

(२०) ऐसी कितनी घटनाओं और चरित्रोंको लेखक असली ढाँचेसे सम्बद्ध कर सका है, इस कार्यमें लेखककी कल्पना-शक्ति कितनी उर्वर सिद्ध हुई है ?

(२१) उपन्यासमें कोई ऐसी घटना तो नहीं आई है जो न प्लाट (कथावस्तु) में सहायक है, न चरित्रचित्रणमें सहायक और न माधुर्य बढ़ानेवाली है ? क्या ये घटनाएँ हमारे भावोंकी गहराई तक पहुँचती हैं ?

(२२) चरित्रोंका उपन्यासमें उत्तरोत्तर विकास होता गया है या नहीं ? कोई असफल चरित्र तो नहीं है ?

(२३) उपन्यासमें प्रमुख चरित्रोंका चित्रण अधूरा तो नहीं रह गया ? उनके चरित्रके सभी पहलू चित्रित हुए हैं या नहीं ?

नाटकके लिए

(शुरूके १४ सवालोंके सिवाय)

(२४) नाटकमें कथा-भागका ऐक्य है या नहीं ? इस नाटकका प्रधान वर्णनीय विषय क्या है ? उसको किस तरह परिपुष्ट किया गया है ?

(२५) इस नाटकमेंकी प्रत्येक घटना सार्थक है या नहीं ? इसमें कोई घटना या दृश्य ऐसा तो नहीं है जिसके न रहनेपर भी परिणाम यही दिखाया जा सकता ?

(२६) नाटकमें कवित्व किस कोटिका है ?

(२७) नाटकका कथा-भाग घटनाओं और चरित्रोंके घात-प्रतिघातसे अग्रसर हुआ है या नहीं ?

(२८) उसके एक या अनेक चरित्रोंमें विपरीत वृत्तिसमूहका समन्वय,—अन्तर्द्वन्द्व बताया गया है या नहीं और वह कैसा है ?

(२९) नाटक कामेडी है या ट्रेजिडी ?

ऐतिहासिक रचनाओंके लिए

(ऐतिहासिक कहानी, उपन्यास या नाटकके लिए)

(३०) इस रचनामें कौन कौन-से चरित्र और घटनाएँ इतिहाससे ली गई हैं और कौनसी लेखककी कल्पना-प्रसूत हैं ?

(३१) कल्पित घटनाएँ और चरित्र ऐसे तो नहीं हैं कि जिनका होना असंभव प्रतीत होता हो ?

(३२) ऐतिहासिक रसकी अवतरणा करनेमें लेखकको कहाँ तक सफलता मिली है ?

कविताके लिए

(३२) इस कवितामें कल्पना अधिक है, चिन्तन अधिक है या अनुभूतिका प्राबल्य है ?

(३३) कवि कल्पनासे चिन्तनकी ओर जाता है, चिन्तनसे कल्पनाकी ओर, अनुभूतिसे चिन्तन और कल्पनाकी ओर या चिन्तन और कल्पनासे अनुभूतिकी ओर ?

(३४) कविकी अनुभूति यत्न-साधित है या अयत्न-साधित ?

(३५) अपने देश, काल, समयका कविपर क्या प्रभाव पड़ा है ?

(यदि कविता कथात्मक हो तो चरित्र-चित्रण आदि बातोंपर भी ध्यान देना चाहिए ।)

सामान्य

(३६) रचना किस हद तक समाजको प्रतिबिम्बित करती है और किस हद तक हमें चोट पहुँचाती हैं ? लेखक यथार्थवादी है, आदर्शवादी है, आदर्शोन्मुख यथार्थवादी है या ' कलाके लिए कला'के सिद्धान्तको माननेवाला ?

(३७) आज हमें किस तरहके साहित्यकी आवश्यकता है, मौजूद रचना उस आवश्यताकी किस हद तक पूर्ति करती है ?

कुछ आलोचनाएँ

बिसाती

यह स्वर्गीय जयशंकर प्रसादजीकी सुन्दर कहानी है। इस कहानीकी अलंकारिक और ध्वनिपूर्ण भाषा बरबस हमें अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। पर यह भाषा और ये अलंकार इस कहानीके भीतरकी अनुभूतिको अधिक ही अभिव्यक्त करते हैं, उसकी अभिव्यक्तिमें बाधा नहीं डालते।

सबसे पहले इस कहानीका वर्णन हमें आकृष्ट करता है। कितने थोड़े शब्दोंमें कितनी अधिक बात कह दी है! पहले ही वाक्य हैं: "उद्यानकी शैलमालाके नीचे एक हरा-भरा छोटा-सा गाँव है। वसंतका सुन्दर समीर उसे आलिंगन करके फूलोंके सौरभसे उसके झोपड़ोंको भर देता है। तलहटीके हिम-शीतल झरने उसको अपने बाहु-पाशमें जकड़े हुए हैं।" और कोई होता तो इन तीन वाक्योंको कमसे कम पाँच वाक्योंमें कहता: ‘ सीमाप्रान्तके पहाड़ोंकी तलहटीमें एक छोटा सा गाँव है। पहाड़ोंमें जो वन है वह बगीचेकी तरह सुन्दर है। वसंत ऋतुमें उसमें बहुतसे फूल खिलते हैं जिससे वहाँकी हवा सुगंधित हो जाती है। यह सुगंधित वायु उस गाँवके झोपड़ोंमें भी भर जाती है। उस गाँवके एक ओर पहाड़ हैं बाकी तीन ओर झरने हैं।" फिर भी वह सौन्दर्य उसमें नहीं आता।

सम्पूर्ण कहानीमें असफल प्रेमकी एक अनुभूति भरी हुई है। सीमा-प्रान्तके एक धनी सरदारकी लड़की शीरीं और उसी प्रान्तके एक दरिद्र युवककी, जो कि वहाँकी चीज़ें हिन्दुस्तानमें जाकर बेचता था तथा हिन्दुस्थानकी चीजें यहाँ बेचता था, असफल प्रेम-कहानी है। वह युवक हिंदुस्तान व्यापारके लिए जाता है। जब वह लौटकर आता है तो अपनी प्रेमिकाको एक धनी सर्दारकी प्रयसी पत्नीके रूपमें पाता है। अपने प्रेमके उपहार-स्वरूप वह कुछ मूल्यवान चीजें भेंट देना चाहता है, पर वे स्वीकार नहीं की जाती। तब वह कोई बहाना करके अपना सब कुछ छोड़कर चला जाता है। इस चले जानेमें जो पीड़ा है उसे बड़े मार्मिक ढंगसे कविने बताया है। हम अपने जीवनमें एक या अनेक स्त्री-पुरुषोंकी ओर आकृष्ट होते हैं, परिस्थितियोंके कारण वह आकर्षण तो नष्ट हो जाता है पर उसकी वेदना बनी रहती है। यह और ऐसी कहानियाँ उस वेदनाको एक बार

ताँजा कर देती हैं। इस कहानीका प्रेमी युवक अपना सर्वस्व न्यौछावर करके हमारे भीतरकी उस वेदनाको शान्त कर देता है और हमारा अंतःकरण द्रवित होकर बह चलता है। इससे एक दैवी करुण-रसकी सृष्टि होती है।

यह कहानी हमारे भीतरी हृदयको इतना अधिक द्रवित करनेमें सफल होती है उसका एक कारण सम्पूर्ण कहानीमें परिव्याप्त उपमालङ्कार है। जब यह अलंकार किसी एक शब्द या वाक्यमें व्याप्त न रह कर सम्पूर्ण रचनामें परिव्याप्त हो उठता है तब उसे हम आजकलकी भाषामें प्रतीकवाद या Symbolism कहते है। इसमें एक बुलबुलको उस प्रेमी युवकके प्रतीकके रूपमें पेश किया गया है। जब शीरींकी सखी जुलेखा कहती है "शीरीं, वह तुम्हारे हाथोंपर बैठ जानेवाला बुलबुल आजकल नहीं दिखाई देता।" तब वह कहती है "कड़े शीतमें अपने दलके साथ मैदानकी ओर निकल गया। वसन्त तो आ गया पर वह नहीं लौटा।" तब हमें लगता है कि यह बुलबुल और कोई नहीं, उसका प्रेमी युवक है। आखिरमें जब वह युवक आँख-मुँह धो आनेका बहाना करके कभी न लौटनेके लिए चला जाता है और शीरीं उसके लिए दुखित होती है तब अपने पतिके द्वारा पूछे जानेपर कहती है, "मेरा एक पालतू बुलबुल शीतमें हिन्दुस्तानकी ओर चला गया था। वह लौटकर आज सबेरे दिखलाई पड़ा। पर जब वह पास आ गया और मैंने उसे पकड़ना चाहा तो वह उधर कोहकाफकी ओर भाग गया।" इस तरह जब हम उसे अपने प्रेमीको "एक पालतू बुलबुल" कहते सुनते हैं तो हमारा दिल भी टूक टूक हो जाता है। हाय, ये खूबसूरत परियाँ कितनी बेवफा होती हैं!

प्रायश्चित्त

भगवतीचरण वर्माकी यह कहानी शायद उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है। एक बिल्लीके उपद्रवसे तंग आकर रामूकी बहूने उसे चौकीसे दे मारा। बिल्ली मर गई मालूम हुई, उसके लिये प्रायश्चित्तका विधान हुआ। थोड़ी देरके लिये घर-भरमें तूफाने बदतमीजी फैल गई। बादमें बिल्ली उठकर भाग गई। यही कहानीका संक्षेप है पर हमारी नित्य-प्रतिकी अनुभूतियोंसे सम्बद्ध होनेके कारण ही यह हमें इतनी सुंदर मालूम होती है। हममेंसे हर किसीको घरमें बिल्ली-चूहोंके उपद्रवका कुछ न कुछ अनुभव होता ही है। कभी कभी तो ये जानवर, हमारी बड़ी बड़ी आशाओंपर पानी फेर देते हैं। यही अनुभूति इसमें अभिव्यक्त की गई है।

साथ ही साथ इसके हमारे समाजमें धर्मध्वजी पाखंडियों और मुखमरोंने गज जमा रखा है, और जिस बेदर्दीसे वे समाजको लूटते हैं उसका भी अच्छा खाका खींचा गया है। परमसुख चौबेकी तरहके चौबोंसे हमें कम काम नहीं पड़ता।

छोटे छोटे वाक्योंवाली मुहाविरेदार भाषा हमारे भीतरकी गुदगुदीको और बढ़ा देती है जिसके कारण हम आदिसे अन्त तक कहानीको रुचिपूर्वक पढ़े जाते हैं।

कविका त्याग

सुदर्शनजी हिन्दीके मशहूर कहानी लेखक हैं। इस कहानीका सबसे अधिक आकर्षक और महत्त्वपूर्ण हिस्सा इसका चरित्र चित्रण है। इस कहानीमें उन्होंने मानव-हृदयकी कमज़ोरी और महत्ता,—पतन और त्यागका चित्र खींचकर रख रख दिया गया है। नामवरीके लोभमें लाला अमरनाथ सरीखे सज्जन पुरुष भी किस तरह पतित हो जाते हैं, अपने मित्र कविकी, जिसे वह कारणवश मरा हुआ मान लेते हैं, रचनाओंको अपने नामसे छाप लेते हैं पर फिर भी अपने मित्रकी विधवा पत्नीके कष्टोंको नहीं भूलते और अखीरमें अपने पापका प्रायश्चित्त सारी संपत्ति और अपनी जान देकर करते हैं। तथा जो कवि अपनी रचनाओंके इस तरह उड़ा लिये जानेपर अपार और प्राणान्त कष्टका अनुभव करता है, वही अपने मित्रकी कीर्तिको कलंकसे बजानेके लिए अपने नाम, अपनी कीर्तिकी किस तरह बलि दे देता है। वह निश्चय करता है कि भविष्यमें जो भी कुछ वह लिखेगा सब उसके स्वर्गीय मित्रके नामसे छपेगा। यह त्याग-भाव हमारे हृदयपर बड़ा असर डालता है।

सुदर्शनजीकी भाषा भी बड़ी मुहाविरेदार और सुंदर होती है। चेहरेके भावोंका तो वे ऐसा वर्णन करते हैं कि एक चित्र-सा खिंच जाता है; उपयुक्त शब्दोंको खोजनेमें उन्हें मेहनत ही नहीं करनी पड़ती, जैसे "लाला अमरनाथका मुख इन्द्रधनुष्यकी मूर्ति था।" इस वाक्यमें उन्होंने क्या नहीं कह दिया। पर यह वर्णन कहीं अतिरंजित हो गया है और जानकारोंकी हँसीका कारण हो सकता है, जैसे एक जगह वे लिखते है "हमें दृढ़ विश्वास है कि यदि यह कविता उसी सुंदरतासे पूरी हो गई तो इसे हिन्दीमें वही दर्जा प्राप्त हो जायगा जो संस्कृतमें शकुन्तलाको, अंग्रेजीमें पैराडाइज़ लॉस्टको और बंगभाषामें गीतांजलिको प्राप्त है।" दूसरी जगह लिखते हैं "इनकी कविताएँ टैगोर और अनातोले फ्रांसके समान हैं।" मालूम होता है कि सुदर्शनजीने इन सब नामोंको सुनभर लिया था, उन्हें

पढ़ा नहीं था। नहीं तो वे शकुन्तला और पैरेडाइज़ लॉस्टको एक कोटिमें नहीं रखते, शकुन्तला छोटाका नाटक है और पैरेडाइज़ लॉस्ट महाभारतकी तरहका महाकाव्य। अनातोले फ्रांसने कविताएँ लिखी ही नहीं। गीतांजलिको भी यदि उन्होंने पढ़ा होता तो उसका नाम भी वे यहाँ नहीं लेते और अगर लेते तो किन्हीं और नामोंके साथ।

इस तरहके छोटे-मोटे दोष तो बड़े बड़े महाकवियोंकी रचनाओंमें भी रह जाते हैं। देखनेकी बात यह है कि अपनी अनुभूतिको पूरी तरह अभिव्यक्त करनेमें लेखकको सफलता मिली है या नहीं। हमे कहना चाहिए कि वह इसमे अच्छी तरह सफल हुआ है।

शत्रु

अज्ञेयजी हिन्दीके एक प्रसिद्ध लेखक हैं, इनका ढंग सबसे निराला है। राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रमें वे करीब करीब सभी पार्टियोमें रह चुके हैं। नर्म कॉंग्रेसवादियोंसे लेकर कम्यूनिस्टो और आतंकवादियों तकमें। विलायतमें ऊँचीसे ऊँची शिक्षा भी आपने ग्रहण की है। उनकी यह कहानी इतनी सुंदर है इसका मुख्य कारण यह है कि इसमे उन्होंने अपने सारे जीवनकी अनुभूति थोड़ेमें भर दी है। उनका अनुभव है कि जो भी मुश्किलें हमें झेलनी पड़ती हैं, और हमें सफलता नहीं मिलती उसका मुख्य कारण है कि हम निश्चित पर लम्बे मार्गको छोड़कर आसान मार्गकी ओर झुकते हैं, फिर चाहे वह आसान रास्ता गलत ही क्यों न हो। हमारे नेता लोग लेक्चरबाजी और दिखावेके आन्दोलन पसंद करते हैं, जमकर देश निर्माणके कन्स्ट्रक्टिव काम करनेसे दूर भागते हैं। इस तरह वे कुछ नहीं कर पाते। आसान राह हमेशा अखीरमें मुश्किल साबित होती है।

इस कहानीका कथानक यों है। ज्ञानको भगवानने अपना प्रतिनिधि बनाकर संसारमें भेजा कि वह संसारको सच्चे मार्गपर लगावे। उसने जाते ही लेक्चरबाज़ी शुरू कर दी। नास्तिक कह कर लोगोंने उसे भगा दिया। धर्मध्वजियोंके खिलाफ कुछ कहा तो जेलमें बन्द कर दिया गया। विदेशियों और पूंजीपतियोंके खिलाफ कुछ कहना चाहा तो और भी कड़ी सजा मिली। आखिर उसने तंग आकर आत्महत्याकी ठानी। उसी समय उसे यह ज्ञान उदित हुआ कि आसानीका रास्ता ढूँढ़नेकी जो हमारी आदत है वही सब अनर्थोंकी जड़ है।

जीवनकी यह बड़ी सचाई इस कहानीमें समन्वित है, इसी कारण यह हमें

इतनी सुंदर मालूम होती है। साथ ही इसमें हमारी आजकलकी भावनाएँ भी प्रतिबिंबित है, इस कारण भी यह हमपर गहरा असर डालती है।

देवसेना

मद्रासके भूत पर्व मंत्री और सुप्रसिद्ध कांग्रेसी नेता चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की यह रचना प्रोपेगण्डिस्ट कही जा सकती है, पर फिर भी एक उत्तम कहानीके इसमें सभी गुण विद्यमान हैं। करुण-रसका तीव्र उद्रेक करनेमें यह खूब सफल हुई है।

इस कहानीमें मद्रास प्रांतके सेलम कसबेके वेयापुरि नामक जुलाहे और उसकी बहन देवसेनाकी दुर्दशाका हृदयद्रावक वर्णन है जो कि उनके पैतृक गृह-शिल्पके नष्ट हो जानेके कारण हुई। इसमे मिलोंके मजदूरोंके नैतिक पतनका तो रुला देनेवाला वर्णन है। पहले तो वैयापुरिको मिलकी नौकरीपर जाना पड़ता है, फिर उसकी बहन भी मिलमें काम करती है, आचरण-भ्रष्ट की जाती है, गर्भवती होती है और अखीरमें बच्चेको लिए भीख माँगती और दुतकारी जाती हुई गली गली मारी फिरती है। सेलममें जिस कुटुम्बमें वह टहलका काम करती थी, ऐसी अवस्थामें उस कुटुम्बके एक लड़के रामनाथय्यर और उनकी पत्नी सीतालक्ष्मीसे उसकी मुलाकात होती है। उसके प्रति उनका व्यवहार हमें और भी काँटेकी तरह खटकता है। उसमें हम अपने उस व्यवहारका प्रतिबिम्ब पाते हैं जो हम रोज ही दरिद्र भिखारियोंके प्रति करते हैं।

इस कहानीमें ग्रामोद्योगो, खासकरके कपड़ेके उद्योगको पुनरुज्जीवित करनेकी प्रेरणा है। इन उद्योगोंके नष्ट होनेमें हमारी जो दुर्दशा हुई हैं, उसकी अनुभूति इसमें व्यक्त हुई है।

ठाकुरका कुआँ

यह प्रेमचंदजीकी एक प्रसिद्ध कहानी है। हिन्दुस्तानके गाँवोंमें ब्राह्मण क्षत्रिय आदि उच्च वर्णके कुएँ अलग रहते हैं और भंगी चमार आदि जातियोंकी कुए अलग। अगर अभाग्यवश कोई जानवर उनके कुएँमें पड़कर मर गया और पानी बदबूदार हो गया तो उनकी जो दुर्दशा होती है, उसका बड़ा ही करुण वर्णन इस कहानीमें है। कुओंपर इन प्रतिबंधोंके खिलाफ,—मनुष्योंके एक वर्गको अपनेसे नीचा समझनेके खिलाफ भी इस कहानीमे जबर्दस्त भावना है। यह कहानी प्रत्यक्ष अनुभूतिपर निर्भर है, इसलिए अधिक असरकारक है।

मूल बातके साथ अवान्तर बातों और विषयोंको सुरुचि-पूर्ण ढंगसे कथामें शामिल करनेमें प्रेमचंदजी एक ही हैं। अपने कुएँके पानीमें दुर्गंध आनेके कारण अपने पतिके लिए ठाकुरके कुँएसे चोरीसे पानी लानेके लिए गंगी जाती है। ठाकुरके दरवाजेपर लोगोंकी बातचीत होती है, उसे गंगी सुनती है। उससे उच्च जातियोंके नैतिक पतन और कुओंपरकी स्त्रियोंकी बातचीतमें स्त्रियोंकी सामाजिक स्थितिपर खूब प्रकाश डाला गया है।

ताई

हिंदू कुटुम्बोंमें अक्सर देखा जाता है कि निःसन्तान स्त्रियाँ अपने देवर-जेठके बच्चोंपर जलती हैं। यह जलन भी उनकी अतृप्त मातृत्व भावनाका ही विकृत रूप, —उसकी प्रतिक्रिया-मात्र है। मनोविज्ञानका कहना है कि प्रेम और द्वेष दोनों एक ही वस्तु हैं,—एक ही वस्तुके दो पहलू हैं। द्वेष हम उसीसे कर सकते हैं जिसपर कि हमारा भीतरी प्रेम हो,—संबंध हो। जिसे हम जानते भी नहीं उसपर भला हम क्या द्वेष करेंगे? किसी दैवी घटना या ऐसी ही किसी जबर्दस्त धक्केकी बातसे कभी मूल वस्तु हिल उठती है और एकाएक दूसरा पहलू हमारे सामने आ जाता है। उसे देखकर हम अचरज करने लगते हैं। इसी मनोविज्ञानिक सत्यको कौशिकजीने अपनी इस कहानीमें प्रकट किया है।

बाबू रामजीदासजीकी स्त्री रामेश्वरी अपने देवरके पुत्र मनोहरको भीतरसे प्यार करती थी, पर चूँ कि उसके खुदके कोई संतान नहीं होती थी, और उसके पति संतानके लिए कोई उपाय भी नहीं करते थे, इस कारण वह बुद्धि-पूर्वक उस लड़केसे द्वेष करने लगी। वह चाहने लगी कि यह मर जाय तो अच्छा। पर जब एक पतंगको पकड़नेके लिए जाते हुए वह फिसलकर छतपरसे गिर पड़ा और रामेश्वरी उसे बचा सकती थी फिर भी उसने नहीं बचाया, तब इस घटनाका इतना ज़बर्दस्त प्रभाव पड़ा कि उसका मातृत्वका पहलू बाहर आ गया। उस लड़केपर उसका असीम प्रेम भरभरा उठा।

सारी कहानीकी भाषा अत्यंत स्वाभाविक और घरू बोल चालसे भरी हुई है। यही कारण है कि वह लेखककी अनुभूतिको इतनी अच्छी तरह अभिव्यक्त कर सकी है।

चचेरे भाई

यह गुजरातीके प्रसिद्ध लेखक रमणलाल वसंतलाल देसाईकी कहानीका अनुवाद है। अनुवादकी भाषा जैसी चाहिए वैसी अच्छी नहीं है, फिर भी, हम मूल कहानीका रस इसमें काफी पा लेते हैं।

इसमें प्राचीन देसाई-कुलके दिनकर और विजय इन दो भाइयोंका चरित्र खींचा गया है। दोनों भाई आपसमें झगड़ते रहते हैं और स्वभावमें भी जरा समानता नहीं है। फिर भी एकपर आफत आते ही दूसरा मदद किये बगैर नहीं रह सकता। कुटुम्ब-प्रेमकी जो अनुभूति इसमें चित्रित की गई है वह हमारे हृदयपर गहरा असर करती है।

दोनों भाइयोंके चरित्रका लेखकने ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमिपर सुंदर विश्लेषण किया है तथा एक दूसरेपर जो वे वाग्बाणोंकी वर्षा करते हैं उनको भी बिल्कुल स्वाभाविक ढंगसे दिया है। इन वाग्बाणोंमें भी एक दूसरेकी गलतियोंके लिए गहरी सहानुभूतिका भाव छिपा है। (जिनकी मातृभाषा गुजराती हो उन्हें चाहिए कि कहानीको मूल गुजरातीमें पढ़ें, फिर इसके अनुवादके दोषोंकी चर्चा भी करें।)

महेश

यह बंगालके सबसे प्रसिद्ध कहानी-लेखक शरच्चन्द्र चटर्जीकी रचनाका अनुवाद है। इसमें धर्मसे मुसलमान पर संस्कारोंसे भारतीय (हिन्दू) गफूर नामक जुलाहे, किसान और उसकी कन्या अमीनाका गो-प्रेम एक बाहरसे धर्मध्वजी हिन्दू पर भीतरसे विधर्मी कसाई ज़मींदार और उसके ब्राह्मण पुरोहितकी नृशंसताकी पृष्ठ-भूमिपर चित्रित किया गया है। ज़मींदार और उसके पुरोहितका हृदयहीन बर्ताव और गफूरकी निरीहता क़दम क़दमपर हृदयपर चोट करती है। प्रेमचंदजीकी कलाकी आलोचना करते हुए जो जैनेन्द्रजीने लिखा है, " शरत् पढ़ते पढ़ते कई बार गुस्सेमें मैंने उसकी कृतियोंको पटक दिया है, और रोते रोते उसे कोसनेको जी किया है। कम्बख्त न जाने हमें कितना और तंग करेगा। " इनके इस कथनका पद पदपर अनुभव होता है।

शरत् बाबूका वर्णन भी बड़ा सुंदर है, " सामने दिगन्त तक फैला हुआ मैदान जल-भुनकर खंड खंड हो रहा था और उसकी लाखों दरारोंमेंसे पृथ्वीके

कलेजेका रक्त निरन्तर धुआँ बनकर निकल रहा था।" इस वाक्यमें 'जल-भुनकर' की जगह सिर्फ 'भुनकर' ही दिया जाता तो अधिक अच्छा होता क्यों कि चने आदि चीजें भुनकर ही खंड खंड होती हैं, जलकर नहीं। इस तरहके अनुवादके दोष इस कहानीमें बहुतसे रह गये हैं, फिर भी, लेखककी अनुभूतिको हम ग्रहण कर पाते हैं।

पनघट

चोरघडेजी वर्धाके नवभारत विद्यालयके अध्यापक हैं। उनकी इस रचनाको 'कहानी' कहनेकी अपेक्षा केवल एक शब्द-चित्र कहना अधिक अच्छा होगा। अनुवाद बहुत ही सदोष हुआ है, भाषा बहुत ही शिथिल है। चोरघडेजी क्या कहना चाहते हैं, कुछ समझ नहीं आता। शायद बड़े हिन्दू कुटुम्बोंमें जो स्त्रियोंकी दुर्दशा होती है, उसकी झाँकी देना चाहते हैं।

काकी

सियारामशरणजी कवि हैं और उनकी कहानियोंमें भी हार्दिकता उनकी कविताओंसे कम नहीं है।

इस कहानीमें बाल-हृदयकी यह सूझ कि जो मा मरकर स्वर्ग चली गई है, उसको पतंगमें बाँधकर पत्र भेजा जा सकता है और पतंगके जरिए उसे नीचे लाया भी जा सकता है, तथा इस सूझके भीतर निहित अनुभूति अभिव्यक्त की गई है। यह अनुभूति हमारे कोमलतम भावोंके भीतर तक प्रवेश कर जाती है। इस कार्यके लिए बापकी जेबमेंसे रुपया चुराना और मार खाना हमारे दिलपर और भी अधिक चोट करता है।

सियारामशरणजीकी भाषा बहुत ही सीधी-सादी सरल है।

देशभक्त

आजसे कोई १५–२० साल पहले उग्रजीकी क़लमकी हिन्दीमें धूम थी। उस समय तक गाँधीजीके आन्दोलनका हमारे देशकी भावनाओंपर वह प्रभाव नहीं पड़ा था जो आज दृष्टिगोचर होता है। उस समय आतंकवादी-आन्दोलनके करनेवाले ही हमारे हृदयोंमें घर किये हुए थे। जिन लोगोंके हृदयमें देशकी जलन होती थी वे अकसर आतंकवादी आन्दोलनमें जा फँसते थे। आम जनता उनके रास्तेपर नहीं जा सकती थी पर उन्हें पूजती जरूर थी। उसी ज़मानेकी यह कहानी है।

इस कहानीके कुछ पात्र आधिदैविक जगत्के व्यक्ति हैं, जैसे ब्रह्मा, विष्णु, महादेव आदि । इस कारण इस कहानीमें एक रोमाञ्चका तत्त्व आ गया है जिससे इसकी सुन्दरता बढ़ गई है । उस ज़मानेमें हमारे देशका श्रेष्ठ र इस तरह अल्पायुमें ही नष्ट हो गया, इसे पढ़कर उसकी अनुभूति जाग्रत हो उठती है । यह अनुभूति बड़ी ही हृदयद्रावक है और इसने इस कहानीको करुण रससे भर दिया है ।

भाषाकी सुन्दरताके लिए उग्रजीकी बड़ी ख्याति है । इस कहानीमें हमें उसका काफी नमूना मिल जाता है ।

पथिक

पं० रामनरेश त्रिपाठीकी यह रचना गाँधीजीके प्रथम असहयोग आन्दोलनके ज़मानेमें लिखी गई थी । उस समय लोग सोचते थे कि अगर संपूर्ण प्रजा और सरकारके सारेके सारे भारतीय कर्मचारी एक साथ अंग्रेजी सरकारसे असहयोग कर दें तो चुटकियोंमें हमें स्वराज मिल जाय । इस रचनामें त्रिपाठीजीने इसी तरह प्रजाके असहयोगसे तंग आकर एक अत्याचारी राजाको भागते हुए चित्रित किया है । पुस्तक पढ़नेसे यह बात भी स्पष्ट हुए बिना नहीं रहती कि वह राजा अँग्रेजी सरकारका प्रतीक Symbol है ।

भोगोपभोगोंसे उकताकर और प्रकृतिके सौन्दर्यसे आकृष्ट हो एक व्यक्ति घरबार छोड़कर वनका रास्ता लेता है । समुद्र तटपर वहाँ उसकी अपनी स्त्रीसे फिर मुलाकात होती है । घर लौट चलनेके लिए वह आग्रह करती है पर वह नहीं मानता । रातको उसकी एक तपस्वी संन्यासीसे मुलाकात होती है । वह उसे जनताकी सेवाका उपदेश देता है । उसके उपदेशसे वह सेवा-मार्गमें लग जाता है । राजद्रोहके अपराधमें राजकर्मचारी उसे गिरफ्तार कर लेते हैं, उसे प्राणदण्ड होता है । उसकी स्त्री यह सुनकर दौड़ी जाती है और जहरका प्याला खुद पी लेती है । लड़केकी हत्या भी की जाती है । प्रजा उत्तेजित हो उठती है और उस व्यक्तिके, जिसे कि कविने ‘ पथिक ’ नाम दिया है, उपदेशानुसार राजासे असहयोग कर देती है । राजाको भाग जाना पड़ता है और प्रजातंत्र सरकार कायम होती है । लोग मंदिर बनाकर पथिक, उसकी पत्नी, लड़के और उस साधुकी पूजा करते हैं ।

कथानक सुंदर है पर एक बात जो खटकती है वह यह है कि उसमें

सुसंगति नहीं है। प्रकृति-वर्णन तथा अवान्तर बातोंमें तो पेजके पेज रंगे गये हैं पर पथिक लोगोंको क्या उपदेश देता है, उन्हें किस तरह जाग्रत करता है आदि बातोंके संबंधमें कुछ नहीं लिखा। इसके लिए १०–५ लाइनें भर काफी समझी गई और उसमें भी बहुत कुछ अनुमान करना पड़ता है। शायद पुस्तक ज़ब्त न हो जाय, इस डरसे न लिखा होगा।

कविकी कोमल पदावली, जिसमें कहीं कहीं गीत-गोविन्दकी छाया दीख पड़ती है, बड़ी मधुर मालूम होती है।

रचना संस्कृत-शब्द-बहुल है। जब यह पुस्तक लिखी गई थी उस समय शायद त्रिपाठीजी हिन्दुस्तानी या आसान उर्दूका पक्ष ग्रहण करनेमें काकासाहब कालेलकरके शिष्य नहीं बने थे।

देवनागरी लिपिमें

उर्दू-हिन्दी कोश

परिवर्द्धित और संशोधित नया संस्करण

इसमें उर्दू और उसमें काम आनेवाले फारसी, अरबी, तुर्की, इबरानी, पोर्तुगीज आदि भाषाओंके लगभग ११००० शब्दोंका सरल हिन्दीमें अनेक पर्यायवाची शब्द देकर अर्थ दिया गया है और प्रत्येक शब्दके आगे यह बतलाया है कि वह शब्द मूलमें किस भाषाका है। साथ ही लिंग, संज्ञा, विशेषण, अव्यय आदि व्याकरणसम्बन्धी संकेत भी दिये हैं। मुहाविरे और उनके अर्थ भी हैं।

नागरी अक्षरोंमें छपा हुआ यह केवल एक ही कोश है और हिन्दी सीखनेवालोंके लिए बहुत ही उपयोगी है। मराठी, गुजराती आदि भाषाओंमें जो सैकड़ों उर्दू अरबी शब्द मिल गये हैं उनका ठीक ठीक अर्थ समझनेके लिए भी यह कामकी चीज है। हिन्दीके अन्य कोशोंमें ये शब्द नहीं मिलते। पहले एडीशनकी अपेक्षा इसमें कोई एक हजार शब्द अधिक हैं। मू० २॥)

मुंशी प्रेमचन्द और पं० सुदर्शनकी

सुन्दर रचनायें

हिन्दीके इन दोनों लेखकोंकी रचनायें अन्य भाषा भाषियोंके लिए अत्यन्त सुगम पड़ती हैं और इनकी भाषा हिन्दीमें सबसे बढ़िया और बामुहाविरा समझी जाती है। साहित्यकी दृष्टिसे तो इनकी रचनायें महत्त्वकी हैं ही।

मुंशी प्रेमचन्द

मानसरोवर (प्रथम भाग) मू०	२)	नारी-जीवनकी कहानियाँ	१॥)
मानसरोवर (द्वि० भा०)	२)	ग्राम्य-जीवनकी कहानियाँ	१।)
नवनिधि	॥।)	गोदान (उपन्यास)	५)

पं० सुदर्शन

चार कहानियाँ	२)	बच्चोंका हितोपदेश	॥)
पनघट ,,	१॥)	राजकुमार सागर	॥)
पुष्पलता ,,	१।)	अँगूठीका मुकदमा	॥)
अंजना (नाटक)	१=)	झंकार (गीत)	॥)

पाठ्य-पुस्तकें

वर्धा सभाकी परीक्षाओंकी और हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी परीक्षाओंकी प्राय: सभी पुस्तकें हमारे यहाँ बिक्रीके लिए तैयार रहती हैं। इसके सिवाय हिन्दीकी प्राय: सभी उच्चकोटिकी पुस्तकें हम बेचते हैं। सूचीपत्रमें मँगाकर देखिए।

संचालक—**हिन्दीग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,**

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई

ाशक—हेमचन्द्र मोदी, ठाकुर बिल्डिंग, आर्देशर दादी स्ट्रीट, बम्बई ४.
मुद्रक—रघुनाथ दिपाजी देसाई, न्यू भारत प्रिन्टिंग प्रेस,
६, केलेवाड़ी बम्बई नं० ४